धार्मिक कहानियां

अनुवादक,
उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म.

सम्पादक,
शशिकान्त झा शास्त्री

● प्रकाशक :

सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल,
जयपुर.

मूल्य : १.००
विक्रम सं० : २०२२
ईस्वी सन् : १९६६
आवृत्ति : १०००

● मुद्रक :
श्री चिम्मनसिंह लोढ़ा,
श्री महावीर प्रि० प्रेस, ब्यावर.

प्रकाशक की ओर से

किसी गम्भीर विषय को समझाने के लिए कथा सब से सरल साधन है। ससार में प्राज्ञ जनो की अपेक्षा अल्पबुद्धि जनों की बहुलता होती है और उनके तत्त्वबोध के लिए कथाओं का अवलम्बन लेने की प्रणाली बहुत प्राचीन है। 'कुलक-सग्रह' मे दान, शील, तप और भावना रूप धर्मचतुष्टयी को सुन्दर रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। वहा विविध उदाहरण उन व्यक्तियों के हैं जिन्होंने इन धर्मों का सेवन करके लाभ उठाया है। मूल गाथाओं मे उन व्यक्तियों का नामनिर्देश मात्र किया गया है। उससे उनके पूरे वृत्तान्त का परिचय नहीं मिलता। अतएव कुलक-सग्रह के परिशिष्ट के रूप मे, उनका पूरा वृत्तान्त देकर इस कमी की पूर्ति की गई। उसी परिशिष्ट को सामान्य पाठकों के लाभार्थ पृथक् पुस्तक के रूप मे भी प्रकट किया जा रहा है। आशा है इन कथाओं से पाठक प्रेरणा ग्रहण करेंगे और अपने जीवन को उच्च बनाने का प्रयत्न करेंगे।

हम पं० र० उपाध्याय मुनिवर्य श्री हस्तीमलजी म० के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिनके अनुग्रह के कारण दोनों पुस्तकें इस रूप में उपस्थित हो सकी हैं।

—प्रकाशक

कथा-सूची

बहुत प्राचीन समय की बात है, हस्तिनापुर नगर में महापराक्रम. बाहुबली के पौत्र श्रेयांसकुमार युवराज पद का भोग कर रहे थे । एक बार उन्होंने स्वप्न देखा कि श्याम-रंग मेरु पर्वत को मैं अमृत घट से सिंचन कर रहा हूं । दूसरी ओर राजा ने भी स्वप्न में देखा कि शत्रुओं के साथ लड़ते हुए योद्धाओं को श्रेयांसकुमार की सहायता से विजय प्राप्त हुई । इधर नगर के सेठ सुबुद्धि ने भी उसी रात स्वप्न में सूर्य को मन्दतेज होते देखा ।

प्रातःकाल राजसभा में आकर सबने अपने-२ स्वप्न की बातें बताईं । राजा ने कहा कि श्रेयांसकुमार को महालाभ होने वाला है । सभा का कार्य सम्पन्न होने पर सब अपने-२ स्थान चले गये । श्रेयांस भी अपने महल के झरोखे में बैठकर चौराहे की ओर देखने लगा । अकस्मात् उसने प्रभु को राजमार्ग पर आते देखा । साधुवेष देखते ही उसको जातिस्मरण ज्ञान प्रगट हो गया ।

भावविह्वल होकर श्रेयांसकुमार प्रभु के चरणों में वन्दन पूर्वक भिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना करने लगा । प्रभु वर्षीतप की पारणा के लिए भिक्षार्थ बाहर निकले थे । उन्होंने श्रेयांस की भक्ति को मान दिया तथा उसके यहां भिक्षा के लिए पधार गए । क्योंकि वे जानते थे कि श्रेयांस साधु धर्म और चर्या के विपरीत आहार नहीं देगा । श्रेयांस ने इक्षुरस देने का भाव प्रगट किया तो प्रभु ने भी सहज रूप से आए हुए इक्षुरस को ग्रहण कर उसके मनोरथ को पूर्ण कर दिया ।

वर्ष के अन्त में श्रेयांसकुमार के यहाँ प्रभु का आहार ग्रहण हुआ। इस समाचार से लोक लोकान्तर में महान् हर्ष फैल गया। देवों ने वसुधारा बरसाई। पंच दिव्य प्रगट हुए और अहोदान की गूंज से गगनमण्डल गुंजायमान हो उठा।

श्रेयांसकुमार ने भी नागरजनों को आहार दान की विधि समझाई। इस प्रकार दान के प्रभाव से उसने लोक और लोकान्तर दोनों सुधार लिए। जो कोई शुद्ध मन से श्रेयांस की तरह दान करेगा वह उभयलोक में पुण्य का भागी बनेगा।

• •

• दानकुलकम् ▶ चन्दनबाला

कथांक : २. गाथांक : ५.

कौशाम्बी नगरी में धन्ना सेठ नाम का एक समृद्धिशाली वणिक् रहता था। किसी के द्वारा उसे एक भूली-भटकी लड़की प्राप्त हुई जो अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी। धन्ना ने बड़े प्रेम से उस किशोरी का पालन-पोषण किया। धीरे-धीरे लड़की सयानी हुई। सेठ का प्रेम प्रतिपल उसके प्रति बढ़ता ही गया।

सेठ की पत्नी का नाम मूला था। वह थी तो एक बड़े सेठ की बहू मगर दया उसमें छू तक नहीं गई थी। वह हर क्षण चन्दना से ईर्ष्या बनाए रखती थी। उसके मन में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि सेठ चन्दना के प्रेम में बुरी तरह फंस कर मेरी उपेक्षा करता है। चन्दना सुन्दरी है और युवती है। असंभव नहीं कि सेठ इसके वश में हो गया हो। अतः जिस किसी उपाय से चन्दना का अन्त करना चाहिये। नहीं तो निश्चय यह एक दिन मेरा अन्त करके छोड़ेगी। सेठानी के मन में यह धारणा घर कर गई और वह मौके की तलाश में रहने लगी।

संयोगवश अपने धन्धे से एक बार सेठ कौशाम्बी से कहीं बाहर गया हुआ था। मूला ने चन्दना को अपने पास बुलाई और उसके बाल कटवा कर पैरों में बेड़ी डाल कर उसे तहखाने (तल घर) में डलवा दिया। जहां वह अन्न-पानी के बिना कष्ट से समय बिताने लगी। चन्दना को तहखाने में डाल मूला सेठानी अपने मायके चली गई।

तीन दिनों के बाद सेठ पुनः अपने घर वापिस आया और चन्दना को नहीं देखा तो आश्चर्य में पड़ गया। वह चारों ओर उसकी खोज

करने लगा। आखिर तहखाने से उसके रोने की आवाज आई। सेठ ने चन्दना चन्दना पुकारा तो वह बोली कि—पिताजी! मैं नीचे के घर में बन्द पड़ी हूं। सेठ ने जब उसकी दुर्दशा देखी तो वह अवाक् रह गया। घड़ी देर के बाद उसने पूछा: बेटी! किसने तेरी ऐसी हालत की है? उसका नाम बताओ। इस पर चन्दना बोली—पिताजी! इसमें किसी का दोष नहीं, यह तो मेरे ही कर्मों का दोष है। इसके लिये आप न तो दुःख करें और न किसी पर क्रोध। हर प्राणी अपने किए का फल भोगने को जिम्मेदार होता ही है। आप बस इतनी ही कृपा करें कि जल्द से जल्द मुझे कुछ खाने को दें। आपके जाने के बाद से अभी तक मुझे अन्न-पानी का योग नहीं मिला है।

सेठ ने मूला को पुकारा, मगर वह तो वहां थी ही नहीं फिर कैसे बोलती। सेठ समझ गया कि निश्चय इस काण्ड का मूल कारण मूला है। सेठ ने इधर-उधर देखा तो छाज में बाकुले के सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया। उन्होंने छाज चन्दना के हाथ में देकर कहा: बेटी! मैं बाजार से तुम्हारे लिए खाने तथा बेड़ी काटने वाले को जब तक लाता हूं तब तक तू बाकला मुंह में रख।

सेठ के जाने पर चन्दनबाला तल घर की देहली में खड़ी होकर देखने लगी कि कोई महात्मा इधर आवें तो उन्हें देकर फिर मुंह में डालूं। सच्ची भावना कभी खाली नहीं जाती। संयोगवश उस समय साधु-शिरोमणि भगवान् महावीर तेरह बोल का अभिग्रह लेकर आहार के लिए भ्रमण कर रहे थे। इस तरह उनको उपवास करते पांच मास और पच्चीस दिन हो गए थे। अभिग्रह का पूर्णरूप कहीं प्राप्त नहीं हुआ और इस तरह उपवास लम्बा होता जा रहा था। कौशाम्बी नगर में घूमते हुए प्रभु चन्दना के घर की ओर चले और यहां आकर उन्होंने देखा तो अभि-ग्रह के १२ बोल मिल गए। केवल आंखों में आंसू नहीं थे। प्रभु इस कमी को ध्यान में रख कर ज्योंही पीछे की ओर मुड़े कि चन्दना की आंखों से मोती की बूंदें गिरने लगीं। घर आई गंगा को यों ही वापिस होते देख कर उसका उत्तप्त हृदय और जल उठा एवं आंखों में सावन-भादों

बरस गए। फिर क्या था ! अन्तःकरण की पुकार पर, भक्ति-प्रेम के जोर पर प्रभु को वापिस होना पड़ा और वन्दिनी चन्दना के हाथ से बाकुले लेने पड़े।

चन्दना के हाथों की हथकड़ियां और पैरों की बेड़ियां, रत्नजटित कंकण एवं नूपुर के रूप में परिणत होकर उसके अनुपम लावण्य में चार चांद लगा दिये। वहां पर सुवर्ण और रत्नों की वर्षा हुई। वातावरण में कुछ और ही रंग आ गया। मगर चन्दना के लिये इन सब का कुछ भी मोल नहीं था। वह तो प्रभु के दिव्य रूप को ध्यान में लिये तन्मय बन गई थी। धन्ना सेठ, सेठानी एवं नागरजनों पर चन्दना के दान का अमिट असर हुआ। चारों ओर चन्दना की जय जयकार होने लगी।

भगवान् को जब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तब चन्दना ने भी उनके चरणों में संयम ग्रहण किया और ३६ हजार साध्वियों में प्रमुख कहलाई। अन्त में कर्म क्षय करके उसने मुक्ति प्राप्त की। वह चम्पा के महाराज दधिवाहन की पुत्री थी।

○ ●

केवलिचर्या में विचरते हुए जब भगवान महावीर के तेरह वर्ष बीत गए तो वे चौदहवें वर्ष में मेढ़िग्राम पधारे। भगवान के पधारने की खबर से वहां के लोग बहुत प्रसन्न हुए और झुण्ड के झुण्ड प्रभु दर्शन एवं देशना श्रवण के लिए जाने लगे। किन्तु प्रभु के एक शिष्य गोशालक को यह बात पसन्द नहीं आयी। वह कुछ दिनों से प्रभु के साथ वैर भाव बनाए हुए था, अतः प्रभु की ख्याति प्रसिद्धि और गुणग्राम का उसके ऊपर बुरा प्रभाव पड़ा। उसने अपने दुष्ट प्रभाव से प्रेरित होकर प्रभु की जीवन लीला समाप्त करने की ठानी।

गोशालक ने प्रभु पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया। प्रभु चाहते तो उसे ऐसा करने से रोक सकते थे परन्तु उन्होंने उसका कोई प्रतिरोध नहीं किया फलतः लेश्या के प्रभाव से आपके शरीर में असह्य पीड़ा उत्पन्न हो गई। पित्तज्वर से शरीर जलने लगा और खून की टट्टियां आने लगी। क्षण क्षण अशांति की वृद्धि होने से आपके समीपस्थ संतों में आकुलता एवं क्षोभ का वातावरण छा गया। सभी चिन्तित हो गये कि कैसे इस दुस्सह व्याधि का प्रतीकार किया जाय ? किन्तु प्रभु वीतरागी होने से सर्वथा निराकुल बने रहे।

आपका प्रिय शिष्य सिंहमुनि, जो मालुकाकच्छ में ध्यान कर रहा था; आपकी वेदना के विचार से निकल उठा और आर्त्तध्यान करने लगा। प्रभु ने उसे पास बुलवाया और कहा—मैं तो शुक्ल ध्यान में लीन हूं, तुम व्यर्थ मेरी चिन्ता क्यों करते हो ? अगर तुम मेरे इस शारीरिक कष्ट को दूर करना चाहते हो तो रेवती के घर जाओ और मांग कर थोड़ा सा विजोरा पाक ले आओ।

प्रभु के कथनानुकूल सिंहमुनि रेवती के घर गए और पाक ले आए। उस पाक के सेवन से प्रभु का शारीरिक कष्ट दूर हो गया। भक्ति और भाव की प्रबलता से रेवती ने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन कर लिया। निर्दोष औषध-दान से रेवती ने यह अक्षय पुण्य फल प्राप्त किया।

• •

मगध देश के राजगृह नगर मे धनदत्त नाम का एक वैभवशाली सेठ रहता था . ढलती अवस्था मे भाग्यवश उसको एक पुत्र हुआ । जिसका नाम कयवन्ना रक्खा गया । बालक बडा ही मेधावी और तीक्ष्ण बुद्धि था । फलत थोडे ही दिनो में वह पारगत विद्वान् हो गया ।

ज्ञान की प्रबलता और शुभ भावोदय से वह वैराग्य की ओर आकृष्ट होने लगा । पैतृक व्यवसाय मे उसकी रुचि नही थी और वह सदा ज्ञान ध्यान मे ही अपना समय लगाता था ।

जवानी मे पिता ने जयश्री नामक रभा के समान एक रूपवती कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया । मगर कयवन्ना का मन इधर आकृष्ट नही हुआ । जयश्री ने उसे प्रेमपाश में बाधने की पूर्ण कोशिश की किन्तु सफल नही हुई । आखिर उसने अपनी सास वसुमती को दुख गाथा कह सुनाई ।

वसुमती उसे आश्वस्त कर अपने पति के पास पहुँची । धनदत्त ने वसुमती का म्लीन मुख देखकर उदासी का कारण पूछा । इस पर वह बोली कि तेरे पुत्र कयवन्ना की प्रवृत्ति कुछ और ही हो गई है । न तो वह व्यापार में हाथ बटाता और न अप्सरा-सी सुन्दरी अपनी पत्नी पर ही प्रेम-दृष्टि डालता है । उसके इस रूखे व्यवहार से जयश्री की मुखश्री उतर गई और बेचारी दिन रात चिन्ता मे डूबी रहती है । अत. कोई ऐसा उपाय करो जिससे कयवन्ना सही रास्ते पर आ जाए ।

वसुमती की बात सुनकर धनदत्त ने कहा कि मैं तो इसमें कयवन्ना का कुछ दोष नहीं देखता। अभी उसकी उम्र ही क्या हुई है? यदि मां बाप के सामने भी बेटा मन की नहीं करे तो कब करे? ज्ञान-ध्यान में मन लगाना और ब्रह्मचर्य का पालन करना कोई बुरी बात तो नहीं है। मेरी राय में उसे सदाचारविमुख बनाना ठीक नहीं होगा। मगर वसुमती अपनी जिद पर तुली रही। हारकर सेठ ने उसकी बात स्वीकार कर ली और नगर के चुने हुए कुछ रसिकों से कयवन्ना का मन बदलने के लिए कहा।

उन विलासी पुरुषों ने विविध विलास-वासनाओं के उद्यान में कयवन्ना के मन-मधुप का चक्कर लगवाया। संगति के प्रभाव से कयवन्ना का मन भी रंगरंगीनी की ओर आकृष्ट हो गया। इस तरह थोड़े ही दिनों में वह पूर्ण मद्यपी और विलासी बन गया। अब वह अपनी और परायी नारी का ध्यान भुला गया। वह पूरा वेश्याभक्त और कामी बन गया। देवदत्ता नाम की नृत्यनिपुण एक वेश्या के प्रेम में फंसकर वह पूर्ण मतवाला बन गया।

एक रात शरत् पूनम की चांदनी में वह देवदत्ता के संग उसके महल की अटारी में आनन्दमग्न बैठा हुआ था कि उसके घर से एक आदमी आया और बोला कि आपके माता पिता आपको याद कर रहे हैं। बारह वर्षों से आपने उन सब की सुध नही ली है, अतः एक बार चलकर उन सब को अपना मुख तो दिखा देवें। यह सुनकर कयवन्ना बोला कि अभी तो मुझे यहां आए बारह दिन भी पूरे नहीं हुए। अतिशय प्रेम के कारण उन लोगों ने इसे बारह वर्ष मान लिया। अच्छा उनसे जाकर कहना कि मैं थोड़े दिनों में ही आजाऊंगा।

दूत ने धनदत्त और वसुमती को सब हाल सुना दिया। यह सुनकर धनदत्त वसुमती पर बिगड़ने लगा कि तुम्हीं लोगों के चलते वह बुरी संगति में फंसा। इस प्रकार चिन्ता करते-२ सेठ और सेठानी संसार से चल बसे, मगर कयवन्ना अपने घर नहीं आया। घर में अकेली जयश्री रह गई। व्यापार धन्धे सभी ठप्प हो गए, और हालत यह हो गई कि जयश्री को चर्खा चलाकर गुजर करनी पड़ी।

जयश्री अतिशय दुःख से समय बिताती थी। एक दिन वह अपने चिर-पालित मैना को कयवन्ना के पास जाने और दुःख निवेदन करने को कुछ समझा रही थी कि उसकी नजर एक आदमी पर पड़ी जो शोक और शर्म से झुका हुआ था। जयश्री को देखते ही वह बोल उठा कि प्रिये ! तुम्हारी दशा बिगाड़ने वाला मैं निर्लज्ज कयवन्ना हूं। सती, तुम धन्य हो और तुम्हारी टेक भी धन्य है। जयश्री पति को पाकर परम प्रसन्न हो गयी।

एक दिन देवदत्ता के बाहर जाने पर उसकी मां ने कयवन्ना को फटकार कर घर से बाहर कर दिया क्योंकि अब उससे द्रव्य प्राप्ति की कोई आशा नही रह गई थी। देवदत्ता को कयवन्ना से हार्दिक प्रेम हो गया था। अतः वह जब घर आयी और कयवन्ना को वहां नहीं देखा तो अपने सारे आभूषणों के संग तत्क्षण उसके घर पर चली आयी तथा बोली कि 'मैं भी आपके बिना नही रह सकती। ये सारे आपके आभूषण हैं, अब इनसे अपनी गृहस्थी चलाइए और मुझको भी अपने शरण में रहने की आज्ञा दीजिए। कयवन्ना भाग्य की विडम्बना पर विमुग्ध था। जयश्री भी यह दृश्य देख कर दग थी। इस तरह वे तीनों परस्पर प्रेमपूर्वक समय विताने लगे।

कयवन्ना ने उन आभूषणों से आधे का व्यापार और आधे के दोनों पत्नियों के आभूषण बनवा दिये। एक दिन किसी दूसरे देश जाते हुए जहाज से कयवन्ना ने परदेश जाकर व्यापार करना चाहा और अपनी युगल पत्नी को भी इसके लिये राजी कर लिया। चलते समय उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरे पीछे तुम दोनों नीति-धर्म के संग चलना। स्त्रियो ने भी उसे प्रेमपूर्वक विदाई दी।

जहाज दूसरे दिन जाने वाला था। अतः कयवन्ना उस रात को अपने घर से बाहर एक देवालय मे जाकर वहां पड़ी एक खाट पर जाकर सो गया।

कयवन्ना के सो जाने पर वहां एक बुढ़िया चार युवतियों के साथ हाथ में दीपक लिये आयी और उन चारो से बोली कि शीघ्र इस खाट को

उठा कर घर ले चलो। देवी की कृपा से अपना काम बन गया। यह सुनकर वे चारों नाजुक वजन होते हुए भी खाट उठा कर घर चली आयीं।

बुढ़िया सम्पत्तिशालिनी थी और उसका एक मात्र बेटा उसी शाम को सर्पदंश से मर गया था। कानून के मुताविक अपुत्र के धन पर राजा का अधिकार हो जाता। अतः धन बचाने के लिये बुढ़िया ने यह अनोखी चाल निकाली थी। खाट उठाने वाली चारों बुढ़िया की पुत्रवधू थी जो भय से उसके इशारों पर नाचती थी।

दूसरे दिन नींद खुलने पर कयवन्ना ने अपने को एक सजे-सजाए आलीशान मकान में पाया। वे युवती उसके पास बैठी एकटक उसको देख रही थीं। कयवन्ना यह सब देख कर चकित था कि बुढ़िया वहां आ पहुँची और बोली कि बेटा! सुस्ती छोड़ कर अपना नित्यकृत्य करो। उसने अपनी उन वधुओं को भी कयवन्ना को पतिरूप में सेवा करने का आदेश दे गई। धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ने और लज्जा हटने से वे सब पति-पत्नी के रूप में रहने लग गये। इस प्रकार वहां रहते कयवन्ना के बारह वर्ष पूरे हो गए और इस अवधि में चारों को एक-एक पुत्र भी हुआ।

एक दिन बुढ़िया ने अपनी वधुओं से कहा कि इसे सोए में फिर वहीं दे आओ, जहां से इसे उठा लायी थी। अब तुम सब के लड़के सयाने हुए, अब इसकी कोई जरूरत नहीं है। बुढ़िया की बात से वधुओं ने अनचाहे भी कयवन्ना को उसी देवालय में रख आयीं।

सवेरे जगने पर कयवन्ना सोचने लगा कि मैं कहां से कहां चला आया। मेरे वे पुत्र और पत्नियां कहां रह गए? उसे यह बदला हुआ दृश्य स्वप्नवत् प्रतीत हो रहा था। मन्दिर के पुजारी ने आकर कयवन्ना को घर पहुंचा दिया। उसकी पत्नी एवं एक बारह वर्ष का लड़का जो उसके चलते समय जयश्री के गर्भ में आ गया था, कयवन्ना का हार्दिक सत्कार किया। कयवन्ना ने अपने बेटे को एक लड्डू दिया जिसको वह अपने एक दोस्त हलवाई के छोकरे के संग खाने लगा। लड्डू को तोड़ते ही उसमें से एक रत्न निकला। जिसको लेकर वह छोकरा घर भाग गया।

कयवन्ना का पुत्र पीछे पीछे उसके घर तक गया मगर हलवाई ने रत्न रख कर एक लड्डू से उस लड़के को फुसला दिया। कयवन्ना ने पास के तीन लड्डू खाने को निकाले तो उसमे से भी एक एक रत्न निकला, जिनसे उसने व्यापार बढाया और आनन्द पूर्वक रहने लगा।

एक समय उसी राजगृह के राजा श्रेणिक का एक हाथी पानी पीने के लिये तालाब मे गया, जहा जल-जन्तुओ ने उसे पकड लिया। बहुत कोशिश से भी जब हाथी बाहर नही हो सका तो राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि जो हाथी को मुक्त करायेगा, उसको बहुत इनाम दिया जायेगा।

कयवन्ना के पुत्र से रत्न लेने वाले उस हलवाई ने रत्न के चमत्कार से जल सुखा कर हाथी की जान बचा दी। राजा उस पर बहुत खुश हुआ, किन्तु मन्त्री अभयकुमार ने बुद्धि बल से जान लिया कि यह रत्न इस हलवाई का नही, किन्तु कयवन्ना का है। हलवाई के द्वारा यह स्वीकार कर लेने पर कि वास्तव मे रत्न कयवन्ना का ही है, राजा कयवन्ना पर प्रसन्न होकर अपनी कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया और दहेज मे बहुत धन दौलत देकर उसे शाह बना दिया। उस दिन से कयवन्ना शाह कहा जाने लगा और उसकी प्रतिष्ठा बढ गई। राज्य मन्त्री अभयकुमार के संग उसकी गहरी दोस्ती हो गई।

एक दिन कयवन्ना के वे चारो पुत्र और पत्निया जो परवशता से बिछुड गये थे, उससे मिलने को यहा आ पहुँचे। अभयकुमार की बुद्धि से इन सब ने कयवन्ना को पहचाना और वे सब भी उसी के साथ रहने लगे। इस तरह कयवन्ना सब के साथ ससुख रहने लग गया।

कुछ दिनो के बाद चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर राजगृह नगरी मे पधारे। राजा श्रेणिक और कयवन्ना शाह भी अपने परिवार के साथ प्रभु दर्शन को पधारे। वन्दना के पश्चात् कयवन्ना ने प्रभु से अपनी मनोवाछित सम्पत्ति मिलने के बारे मे पूछा। प्रभु ने कहा कि यह सुपात्र दान का परिणाम है।

पूर्व भव में तुम शालिग्राम में एक ग्वाला के पुत्र थे। पिता के मर जाने पर तेरी माँ विपत्ति में पड़ गई। एक दिन अपने किसी पड़ोसी को खीर खाते देख कर तुमने अपनी माँ को खीर खाने के लिये तंग किया। निदान बड़ी कठिनाई से उसने तेरे लिए खीर तैयार कर एवं थाली परोस कर आप कार्यवश कहीं बाहर चली गयी। इस बीच गोचरी में आये किसी संत के पात्र में तुमने सारी खीर उड़ेल दी और आप थाली चाटने लगे। साधु तुम्हें "धर्मलाभ" का उपदेश देकर चलते बने। वही ग्वालबाल काल कर आज तुम कयवन्ना के रूप में सुख भोग रहे हो। अपना भोजन मुनि को देने के पुण्य से ही इस जन्म में तुमने ऐसी अपार सम्पत्ति प्राप्त की है।

यह सुनते ही कयवन्ना का सुप्त वैराग्य-रंग जग गया और उसने प्रभु से संसार-सागर पार कराने की प्रार्थना की। प्रभु ने व्रत ग्रहण करने का आदेश दिया। कयवन्ना घर आया और अपना मनोभाव अपने परिवार वालों को बता दिया। यह सुन वे सब भी व्रत लेने को तैयार हो गए।

इस प्रकार कयवन्ना ने अपनी पत्नी सहित भगवान् के पास आकर दीक्षा ले ली और ध्यानाग्नि में अपने कर्म-मल को भस्म करते हुए केवल-ज्ञान प्राप्त कर, बाद परम पद प्राप्त किया।

सच है सुपात्र दान की महिमा अपार है।

● ●

शालिभद्र का नाम और उनकी सम्पत्ति आज भी जैन जगत् में प्रसिद्ध है। लोग दीवाली पर बही बदलते समय हृदय मे शालिभद्र को याद करते है तथा उन जैसी ऋद्धि की कामना करते हैं।

उनकी इस अतुल ऋद्धि और समृद्धि के पीछे एक कहानी है जो दान से जुड़ी हुई है, जैसे कि ग्वाल पुत्र सगम को अपनी बेहद गरीबी में एक बार खीर खाने की इच्छा हुई। उसने अपनी कामना माता के सामने रखी और माता ने उदार पड़ोसियों की मदद से पुत्र की इच्छा पूरी करदी।

सगम जब खीर खाने बैठा तो इच्छा हुई कि ऐसी अच्छी चीज मिली है तो "क्या ही अच्छा होता कि कोई साधु इधर से निकलते और उनको देकर फिर मैं खाता।" सयोग से एक तपस्वी मासोपवास की पारणा के लिये जा रहे थे : बच्चे ने देखा तो प्रार्थना की : भगवन्! भाग्यवानों के यहा तो सदा जाते हो, कभी हमारे जैसे दीनों की झोपड़ी में भी पधारा करो।

मुनि ने बालक की प्रार्थना को मान कर उसके यहां पारण ग्रहण किया। बालक ने भी बडे प्रेम से अपने लिये मिली हुई खीर संत को बहरा दी और आप उनके जाने के बाद थाल चाटने लगा। माँ ने थाल चाटते देख कर समझा कि बच्चा भूखा है और उसने थोड़ा और पुरोस दिया। बालक ने मुनि को बहराने की बात माँ से नहीं की।

इस दान के प्रभाव से संगम ने अतुल पुण्य का संचय किया और राजगृही के सेठ गोभद्र के यहां पुत्र रूप से जन्म लिया। नाम शालिभद्र पड़ा। मां बाप का इकलौता पुत्र होने से लालन-पालन का क्या पूछना? शिक्षा दीक्षा के बाद पिता का स्वर्गवास हो जाने से पुत्र की सारी व्यवस्था माता के ऊपर ही रही और उसने ३२ कुलीन कन्याओं के साथ उसका विवाह करा दिया। पुण्योदय से शालिभद्र को किसी बात की कमी नहीं थी और वह प्रतिदिन देवोपम सुख का अनुभव करता था।

एक दिन राजगृही में रत्न कंबल के कुछ व्यापारी आए और माल नहीं बिकने के कारण उदास मन से लौटने लगे। शालिभद्र की मां सेठानी भद्रा की दासी ने उन उदास व्यापारियों को देख कर कहा कि तुम हमारी माताजी से मिलो, वे तुम्हारी उदासी मिटा देंगे। व्यापारी ने सोचा कि जो काम यहां के राजा से नहीं हुआ वह एक महाजन की स्त्री कैसे कर सकती है? फिर भी परीक्षा करने में कुछ हर्ज नहीं है।

व्यापारी सेठानी भद्रा के पास पहुँचा और अपना परिचय देकर रत्न-कंबल सामने रख दी तथा प्रत्येक कंबल की सवा लाख कीमत भी बता दी।

रत्नकंबल देख कर माताजी बोली कि भाई! कीमत की तो कोई बात नहीं पर मेरी बहुएँ ३२ हैं तो कंबल भी ३२ ही चाहिये। इस पर व्यापारी ने कहा: अभी तो मेरे पास १६ है। सेठानी ने २० लाख सोनैया दिला कर रत्नकंबल खरीद ली और बहुओं को आधे-आधे करके दे दिए। बहुओं ने भी स्नान के बाद उनसे शरीर पोंछ कर उन्हें पीछे गिरा दिया।

सफाई के लिये भंगिन वहां आयी तो रत्नकंबल देख कर दंग रह गई और उसमें से एक टुकड़ा शरीर पर धारण कर वह राजमहल की सफाई करने को चली गई। जब वह सफाई कर रही थी तो रानी की आंख उसकी कम्बल पर पड़ी। रानी ने पूछा कि यह कहां से लाई हो तो उसने सारी बात कह सुनाई। रानी का मन उस कम्बल के लिए मचल पड़ा और उसने रत्नकम्बल पाने का निश्चय कर लिया।

मगधाधिपति श्रेणिक को जब रानी की चिन्ता का पता चला तो उन्होंने कम्बल के लिए सेठानी भद्रा के पास एक आदमी भेजा। भद्रा ने राजपुरुष को बतलाया कि रत्नकम्बल तो बहुओ ने शरीर पोंछ कर पीछे गिरा दिये है। मेरे लायक कोई दूसरी आज्ञा हो तो फरमावे।

राजा यह सुन कर विस्मय मे पड गया कि जिस घर की बहुएँ रत्नकम्बल जैसी बहुमूल्य वस्तु को शरीर पोंछ कर फेंक देती हैं, उसके घर का ठाठबाट और साहिबी कैसी होगी ?

राजा श्रेणिक स्वय शालिभद्र के वैभव को देखने के लिए उसके घर आया और वहा उसका भवन तथा वैभव रग देख कर दग रह गया। सेठानी भद्रा ने हृदय से श्रेणिक का स्वागत किया तथा शालिभद्र को भी स्वागत के लिये पुकारा। शालिभद्र ने समझा कि माँ कम्बल खरीदने के लिये बुलाती हैं, उसने वही से कहा कि मुझे पूछने की क्या जरूरत है। सस्ता या महगा जैसा भी हो खरीद कर भडार मे रखवा दो।

यह सुन कर माता बोली बेटा ! यह कोई सौदा नही जो खरीद कर भण्डार मे रखवा दूँ, यह तो मगधाधिपति महाराज श्रेणिक अपने घर को सनाथ बनाने आये हैं। जल्द आओ और अपने नाथ के चरण वन्दन करो।

शालिभद्र शीघ्र नीचे आया और श्रेणिक के चरणो पर गिर पड़ा। राजा ने प्यार से उसे गोद में बिठाया पर शालिभद्र का शरीर पानी-पानी हो गया कि मेरे ऊपर भी नाथ है। निश्चय अभी मेरी करनी मे कुछ कसर है। इस साधारण निमित्त ने उसमे विरक्त भाव भर दिया और धन्नाजी के सहयोग से वह प्रभु की सेवा मे दीक्षित होकर आत्मकल्याण करने मे समर्थ हो गया।

• •

धन सार्थवाह

कथांक : ६. गाथांक : ६.

प्राचीन समय में क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर में महाराज प्रश्नचन्द्र न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उसी नगर में धन नाम का एक सार्थवाह भी रहता था। जो अपने वाणिज्य-व्यवसाय के लिये राज्य-भर में प्रसिद्ध था।

एक बार व्यापार के लिये उसने बाहर जाने की इच्छा की तथा भेरी बजवा कर लोगों को सूचना कराई कि जो कोई भी मेरे साथ चलना चाहे, उसको मैं अपने खर्च से बाहर ले जाने को तैयार हूं। इस घोषणा को सुन कर बहुत से व्यवसायी और कुछ साधारण स्थिति वाले भी व्यापार के लिये बाहर जाने को सार्थवाह के पास चले आए।

शुभ मुहूर्त में प्रस्थान होने ही वाला था कि इसी बीच धनघोष नाम के आचार्य अपने चरण-कमल से धराधाम को पवित्र करते हुए सदल वहां आ पहुंचे। सार्थवाह ने विधिपूर्वक नमस्कार कर आचार्य के आने का कारण पूछा। आचार्य ने कहा : हम सब भी तुम्हारे साथ बसंतपुर जाने को आए हैं। सार्थवाह ने आचार्य को भोजन के लिये आग्रह किया। इस पर आचार्य ने मुनिजनोचित आहार की विधि उसे बतलाई। सार्थवाह ने पके हुए आम थाली में रखकर आचार्य को निमन्त्रित किया किन्तु शस्त्र द्वारा काटे न जाने के कारण सचित्त होने से आचार्य ने उनको ग्रहण नहीं किया और बतलाया कि हम मुनियों के लिये निर्दोष अचित्त भोजन ही ग्राह्य होता है। सार्थवाह ने कहा : आचार्य ! वस्तुतः आपके नियम बहुत कठोर हैं। अब हम आगे से आपकी बात का ध्यान रखेंगे।

प्रातःकाल सब का वहां से प्रस्थान हुआ। आचार्य भी साथ चले। क्रमशः दुर्गम मार्ग को पार करते हुए सब के सब एक अटवी में आ पहुँचे। सार्थवाह तथा अन्य लोगों ने कन्द मूल से अपना गुजारा कर लिया। रात में सार्थवाह ने शान्तचित्त होकर सोचा कि मेरे साथ के काफिले में कोई दुःखी तो नहीं है? सहसा उसे आचार्य की याद हो आई जिन्होंने किसी प्रकार का आहार ग्रहण नही किया था।

सवेरा होते ही सार्थवाह आचार्यश्री के दर्शन के लिये आया और देखकर चकित रह गया कि मुनिगण विविध आसन लगाए पठन-पाठन एवं ध्यान चिन्तन में तल्लीन हैं। सार्थवाह ने वन्दन पूर्वक आचार्य से क्षमा-याचना की तथा विनीत भाव से निवेदन किया कि भगवन्! साधु महाराज हमारे यहां पधारें तो प्रासुक आहार का योग है। ऐसा कह कर वह अपनी जगह पर चला आया। पीछे से आचार्य ने दो साधुओं को भिक्षा के लिये भेजा। किन्तु उस समय अन्नादि अनुकूल भोज्य-द्रव्य का अभाव होने से सार्थवाह सहम गया और सकुच कर बोला कि भगवन्! शुद्ध घी का संयोग है, कृपया ग्रहण करें। घी को निर्दोष समझ कर लेने के लिये साधुओं ने पात्र आगे रख दिया। सार्थवाह निर्मल भाव से पात्र में घी डालने लगा। भावावेश में वह इतना तन्मय था कि उसे यह पता भी नहीं चला कि घी भर कर पात्र मे बाहर गिर रहा है। वह तो भाव-विभोर होकर, दान कर रहा था। फलतः अध्यवसाय की निर्मलता से उसने तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन कर लिया और जन्मान्तर में दिव्य ऋद्धि के साथ तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया। यह सुपात्रदान का ज्वलन्त उदाहरण जन-जन के लिए आज भी सर्वथा अनुकरणीय है।

• •

बाहु मुनि

महामुनि बाहुबली का जीव पूर्वजन्म में बाहु और सुबाहु के रूप में था। बाहु राजपुत्र था और सुबाहु एक सेठ का पुत्र। इनके दो मित्र और थे एक पीढ़ और दूसरा महापीढ़ जिनमें पीढ़ मंत्री का पुत्र था और महा-पीढ़ सार्थवाह का पुत्र। इन चारों में अच्छा स्नेह था। ये परस्पर प्रीति-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे।

जिस समय वज्रसेन दीक्षित होकर तीर्थंकर हुए, उनके अन्य साथी सांसारिक भोगसुखों में ही लगे रहे। जब वज्रसेन को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसी दिन वज्रनाभ के यहां चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई। थोड़े ही समय में वज्रनाभ चक्रवर्ती हुआ और उसके साथी चार मित्र मांडलिक राजा। पूर्वजन्म के साधु सेवा के फल से वज्रनाभ चौरासी लाख पूर्व तक राज भोगता रहा। उसने तीस लाख पूर्व कुमार पद, सोलह लाख पूर्व मांडलिक पद चौबीस लाख पूर्व चक्रवर्ती और चौदह लाख पूर्व तक दीक्षापर्याय का पालन किया।

इसके चक्रवर्ती काल में तीर्थंकर वज्रसेन का समवसरण हुआ तब चारों मित्रों के संग वज्रनाभ भी दीक्षित हो गया। वज्रनाभ चौदह पूर्व के ज्ञाता हुए और चारों मित्र एगारह अंग के जानकार। इनमें बाहुमुनि में सेवा का बड़ा गुण था। वे मित्रमुनि और अन्य साधुओं की निश्छल भाव से आहारादि के द्वारा नित्य सेवा करते। सुबाहु मुनि भी प्रतिदिन सब मुनियों की सार-संभाल तथा प्रतिलेखनादि किया करते।

बाहु और सुबाहु की सेवावृत्ति देख कर वज्रनाभ उनके गुण-गान करते कि इन दोनो का जीवन सफल है, जो ये साधुओं की सेवा करते हुए नहीं थकते और न मन में ग्लानि ही लाते हैं।

बाहुमुनि ने दीर्घकाल की साधु सेवा और साधुओं को आहारादि देने के फलस्वरूप बाहुबली के रूप में उत्कृष्ट पुण्यपद की प्राप्ति की। धन्य है दानी बाहुमुनि को।

• •

राजा मूलदेव

कथांक : ८ गाथांक : ११.

"वेनातट" नगर के राजा मूलदेव; राज्य पाने के पहले उज्जयिनी की प्रमुख गणिका देवदत्ता के यहां रहते थे। उसके यहां अचल नाम का एक वणिक्‌पुत्र भी रहता था। देवदत्ता धनपति मूलदेव को चाहती थी तथा उसकी माँ अचल को।

एक दिन देवदत्ता की माँ ने कहा : बेटी ! तुम उस जुआरी के मोह में क्यों फँसी हो ? अपने रुप गुण के पीछे तो एक से एक बढ़कर लट्टू हो सकता है फिर एक निगुणी के पीछे पड़ने से क्या लाभ ? यह सुनकर देवदत्ता बोली — मां ! यह निर्गुणी नहीं पंडित है। माँ ने कहा—क्या यह हमसे भी अधिक विज्ञान जानता है ? क्या इसकी बुद्धि अचल से भी तीक्ष्ण है जो कि तर्क कला में पूर्ण प्रवीण है। एक दिन दोनों की बुद्धिपरीक्षा लेकर देखो कि कौन कितना होशियार है ?

मां के कथनानुकूल एक दिन देवदत्ता ने गन्ना खाने की इच्छा अचल के सामने प्रकट की। फिर क्या था, अचल ने एक गाड़ी भर गन्ना लाकर देवदत्ता के सामने डाल दिया। देवदत्ता ने कहा — मां देखो, अचल ने मुझे हथिनी समझ कर खाने के लिए एक गाड़ी गन्ना ला दिया है। मां ने कहा — मूलदेव से जाकर कहो कि मैं गन्ना खाना चाहती हूं। मूलदेव ने गन्ना लाकर उसके टुकड़े किए और छील कर तश्तरी में सजा कर देवदत्ता को भिजवा दिए। देवदत्ता ने कहा—देख, इसका विज्ञान ! बिना अच्छी तरह समझाए भी यह सब कुछ स्वयं समझ गया। वृद्धा चुप हो गई।

वृद्धा मूलदेव पर क्रोध प्रकट करती हुई अचल से बोली - तुम चिन्ता नही करो मैं देवदत्ता को तुम्हारे अनुकूल बनाने मे कोई कसर नही रक्खूंगी, और यथाशीघ्र मूलदेव को पकडाने का प्रयास भी करूंगी। अचल ने वृद्धा को १०८ मुहरें देकर कहा कि तुम देवदत्ता को मेरे साथ रहने के लिए राजी कर दो। अचल का कार्य तुरन्त ही सम्पन्न हो गया - क्योंकि मूलदेव कही बाहर गया हुआ था।

जब मूलदेव बाहर से आया तो अज्ञात रूप से शय्या के नीचे छुप गया। अचल ने यह बात जान ली। देवदत्ता ने दासी को बुला कर अचल के शरीर पर मालिश (अभ्यग) करने को कहा। अचल शय्या पर बैठा हुआ ही बोला कि इसी शय्या पर आकर मालिश करो। दासियो ने कहा — ऐसा करने पर शय्या खराब हो जाएगी। अचल बोला परवाह नही करो, मैं इस से भी सुन्दर शय्या दिला दू गा। मैंने शय्या पर अभ्यग करने का ही स्वप्न देखा है। दासियों ने उसके कहने के अनुकूल ही किया। शय्या पर बैठे अचल ने मूलदेव के बालो को पकड कर खीचा और कहा—जाओ आज मैं छोडता हू क्योकि हम तुम दोनो चिरकाल तक यहा साथ रहे हैं और तुम ब्राह्मण पुत्र भी हो अन्यथा आज तुम हम से बच नही पाते।

अचल के द्वारा अपमानित होकर मूलदेव लज्जावश उज्जयिनी मे निकला और वेनातट की ओर चल पडा। रास्ते मे उसे एक यात्री मिला जिसने अपने को वेनातट जाने वाला बतलाया। मूलदेव ने कहा—चलो हम दोनो साथ ही चलते है और उसके हा कहने पर वे दोनो साथ चल पडे।

रास्ते मे एक जगल आया। यात्री के पास मार्ग का भोजन था। मूलदेव ने अनुमान से सोचा कि महयात्री होने के कारण पाथेय मे यह मेरा भी हिस्सा करेगा किन्तु यात्री ने उसे कुछ भी नही दिया। तीसरे दिन जगल निकल गया। मूलदेव ने पूछा—क्या यहा पास मे कोई गाव भी है ? यात्री ने कहा—मार्ग के पास ही यह गाव है। मूलदेव के पूछने पर यात्री ने बतलाया कि मैं इसी पास वाले गाव का रहने वाला हू। मूलदेव ने उससे पूछा — मैं उस गाव चलू ? यात्री ने उसे गाव का रास्ता दिखा दिया।

मूलदेव उस गांव में जाकर भिक्षा के द्वारा भूख मिटाने का उपाय करने लगा। घूमते हुए उसे कुछ उड़द मिले। सोचा – समय के अनुसार रहना चाहिए, उड़द को लेकर वह गांव से निकल रहा था कि सह मासिक क्षपण के पारणे वाले एक साधु भिक्षा के लिए आते दिखाई दिए। मूलदेव ने बड़ी भक्ति से उड़द के बाकलों से प्रतिलाभ दिया और बोला – भाग्यशाली मनुष्य के ये माष साधु के पारणे में काम आ रहे हैं।

समीपवर्ती देवने प्रसन्न होकर मूलदेव से वर मांगने को कहा। मूलदेव ने हजार हाथी और देवदत्ता के साथ राज्य की मंगनी की। देव ने कहा ऐसा ही होगा। वहां सें चल कर मूलदेव वेनातट पहुंचा और वहां एक जगह खात देते हुए पकड़ा गया। राज्याधिकारी ने उसके वध की आज्ञा दी। संयोगवश उसी समय नगर का राजा चल बसा था। पुत्रहीन होने के कारण मंत्रिमंडल ने उत्तराधिकारी के लिए घोड़ा छोड़ा था। घोड़ा घूमते हुए मूलदेव के पास आया और उसे पीठ पर बैठा लिया। फिर क्या था मूलदेव राजा बन गया?

राजा बन जाने पर मूलदेव ने उस यात्री को बुलवाया और उससे बोला कि – तुम्हारे सहयोग और मार्ग दर्शन से मैं यहां तक पहुँच सका। वर्ना मैं कहीं बीच में ही रह जाता। वास्ते मैं तुमको अपने राज्य में एक अच्छा पद वाला काम देता हूं। इस प्रकार उस यात्री को प्रसन्न कर मूलदेव ने उज्जयिनी के राजा से प्रेम सम्बन्ध जोड़ा और उन्हें दानमान से सम्मानित कर देवदत्ता गणिका की याचना की। प्रत्युपकार से बंधे उज्जयिनीपति ने उसे देवदत्ता दिलादी, मूलदेव देवदत्ता के साथ साथ सुख पूर्वक रहने लगा। कुछ दिनों के बाद देशान्तर से व्यापार के प्रसंग में घूमते हुए अचल वेनातट आ पहुँचा। मूलदेव के लोगों ने राजकीय शुल्क लेने के बहाने उसको पकड़ लिया और बोला कि तुमने महसूल चुराने के ख्याल से कुछ माल छिपा के रक्खा है, ऐसा कहकर वे उसे पकड़ कर राजा के पास ले गए।

मूलदत्त ने अचल को देख कर पूछा कि क्या तुम मुझे पहचानते हो? अचल बोला – आपको कौन नहीं जानता? आप राजा हैं। मूलदेव ने कहा

अच्छी तरह देख लो मैं वही मूलदेव हूं और ऐसा कह उसने अचल को विदा कर दिया और आप सुख के साथ राज्य चलाने लगा।

एक बार, रात के समय नगर की गश्त देते हुए मूलदेव ने किसी चोर का पीछा किया और चोर के द्वारा मरणान्त उपसर्ग पाकर भी पुण्य प्रभाव से बाल बाल बच गया। यह सब मात्र तपस्वी को दिए दान का फल है।

● ●

सती राजीमती

कथांक : ९. गाथांक : ५.

महाराज उग्रसेन की प्रिय पुत्री सती राजमती को कौन नहीं जानता ? नेमिराजुल की अनुपम जोड़ जैन साहित्य में सर्वथा प्रख्यात और सर्वजन विश्रुत है। जिस समय नेमिनाथ पशुओं की दया से प्रभावित होकर, वैवाहिक तोरन के नजदीक से रथ मोड़ कर विरक्त भाव से गिरनार पर्वत की ओर चल पड़े, राजीमती भी असार संसार से विरक्त हो गई ।

जब वह दीक्षा ग्रहण कर रैवताचल की ओर जा रही थी, सहसा मूसलाधार वर्षा होने लगी। बचने के कोई साधन पास नहीं होने से राजीमती के सारे वस्त्र भींग कर शरीर पर धारण करने योग्य नहीं रहे। हार कर उसने उन्हें पास की ही गिरि गुफा में सुखाने को फैलाए। संयोगवश पहले से ही वहां समुद्रविजय के पुत्र और अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमि ध्यान कर रहे थे। एकान्त शान्त गिरि गह्वर में विवस्त्रा बाला का तन देख कर रथनेमि का मन अकस्मात् चंचल हो उठा। राजीमती की नजर भी उन पर पड़ी और वह बिल्कुल सहम गई। भयभीत दशा में कांपती हुई बाहुओं से उसने अपने गोपनीय अंगों को गोपन किया और आंखें मूंद कर जमीन पर बैठ गई।

राजीमती को भयभीत देखकर कामविकल रथनेमि बोले : हे सुरदेवी ! मैं रथनेमि हूं। हमसे डरने की कोई जरूरत नहीं और न यह समय सहमने और संकोच करने का ही है। मनुष्यभव और सुन्दर रूप सहसा प्राप्त नहीं होता। इस सुन्दर जवानी को भोगे बिना गंवाना निरी

मूर्खता है। इसलिये आओ और दिल खोल कर काम भोग भोगो। भोग भोगने के बाद ही धर्म-मार्ग का शरण श्रेयस्कर जंचता है।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का तपःपूत मनोबल काम विकार से टूट-सा गया है। इस समय यह होश में नहीं है और भोग भावना से प्रभावित होकर योग मार्ग से भ्रष्ट हो चुका है। उसने अपने मन को दृढ़ बना कर रथनेमि से कहा कि भले ही तुम रूप में वैश्रमण समान हो और भोग भोगने में नलकूवर या साक्षात् इन्द्र के तुल्य ही क्यों न हो, तब भी मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। ऐ काम के पुतले! वमन की हुई वस्तु को खाकर जीवित रहने की अपेक्षा तो तुम्हें मर जाना ही अच्छा है। धिक्कार है तुम्हारे नाम को और तुम्हारे इस एकान्त तप को। मैं महाराज उग्रसेन की पुत्री हूं और तुम समुद्रविजय के पुत्र हो। हम लोगों को गंधनकुल के सर्प की तरह नहीं होना चाहिए जो वमन किए हुए विष को फिर ग्रहण कर लेता है।

साध्वी राजीमती के मर्मस्पर्शी बोधप्रद वचनों को सुनकर अंकुश विवश गज की तरह रथनेमि का काम-चलित मन स्थिर और शान्त हो गया। वह पूर्ववत् पुनः अपनी साधना में जा लगा। सती राजीमती ने भी आजीवन शुद्ध शील का पालन कर अपना कल्याण किया। यह सब शील प्रताप का ही परिणाम है।

●●

सती सुभद्रा

कथांक : १०.　　　　　　　　　　　　　　　　गाथांक : ७.

शीलवती नारियों में सती सुभद्रा का नाम भी बहुत आदर से लिया जाता है। वह वसंतपुर के सेठ जिनदास की प्रिय पुत्री थी। बचपन से ही उसका संस्कार धार्मिक एवं सदाचारपूर्ण था। जिनधर्म को छोड़ कर वह किसी अन्य मत पर श्रद्धा नहीं रखती थी। उसका संकल्प था कि जिन धर्मावलम्बी के साथ ही विवाह करना अन्यथा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना।

सुभद्रा के रूप और गुण की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। जिससे बड़े-बड़े लक्ष्मीपुत्र सुभद्रा के लिये लालायित रहने लगे किन्तु सेठ जिनदास की आंखों में पुत्री के अनुरूप कोई वर नहीं बसा।

एक दिन चम्पानगरी का बुद्धदास सेठ जिनदास के घर आया। सुभद्रा के रूप, सौन्दर्य और धर्मप्रेम की बात सुनकर वह उसको पाने के लिए आतुर हो उठा। स्वार्थवश उसने नकली श्रावक बन कर उपाश्रय में जाकर धर्मसाधना चालू करदी। सेठ जब भी उपाश्रय में जाते, बुद्धदास वहां अवश्य मिलता। उन्होंने तरुणवय में ऐसा धर्मज्ञ देखा तो गद्‌गद हो गए।

एक दिन सेठ जिनदास ने बुद्धदास को अपने यहां भोजन के लिए निमन्त्रित किया। बुद्धदास इस निमन्त्रण को पाकर हृदय से प्रसन्न हुआ और मन ही मन सोचने लगा कि अब मनोरथ की सिद्धि में देर नहीं है। सेठ के घर पहुँच कर, उसने मौन पूर्वक जो भी मिला निर्मम भाव से खाकर पचक्खाण कर लिया। जिनदास और उसका सारा परिवार बुद्धदास का

धर्म-व्यवहार देखकर हृदय से सन्तुष्ट हो गया। उन सबने चलते समय बुद्धदास से सम्बन्ध के लिए कहा। पहले तो उसने आनाकानी की फिर मनचाही मांग को पूरी होते देखकर कहा—मैं आपकी आज्ञा नहीं टाल सकता, क्योंकि आप मेरे बड़े उपकारी हैं।

जिनदास ने शुभ मुहूर्त में बुद्धदास के साथ सुभद्रा का पाणिग्रहण सम्पन्न किया। कुछ समय के बाद बुद्धदास ने अपने घर जाने की अनुमति चाही। जिनदास ने भी बड़े सन्मान और द्रव्य दान के साथ बुद्धदास को सुभद्रा के साथ विदा किया। चलते समय जिनदास ने सुभद्रा को संदेश के रूप में कहा कि बेटी ! देव, गुरु, धर्म की भक्ति में तन मन से रंगी रहना और जिस घर में जा रही हो वहां के सुख दुःख को अपना मान कर चलना सत्य और शील जिसका बाल्यकाल से ही सम्मान करती आई हो, उस पर कोई दाग नहीं आने देना। इस तरह सत् शिक्षण से सुभद्रा को प्रहृष्ट मन बना कर जिनदास ने विदा दिया।

माता पिता के उपदेश को शिरोधार्य कर सुभद्रा पतिगृह चम्पा पहुँची और सासु ससुर को प्रणाम कर गृहकार्य के संग धर्मकार्य में भी तत्पर रहने लगी। वह गृहकार्य में कोई कमी नही आने देती फिर भी उसका धर्म साधन और जैन धर्म के प्रति निश्छल श्रद्धा भाव देख कर उसकी सासु अप्रसन्न रहने लगी। सत्संग और मुनिदर्शन के अभाव में सुभद्रा अपने आपको पुण्यहीना अनुभव करती। उसके मन में ख्याल आया कि इस सम्बन्ध में हमारे साथ धोखा हुआ है। पर मेरी सफलता इसी में है कि एक विधर्मी परिवार में रहकर जिन धर्म की निर्मल साधना में कोई कमी नहीं आने दूं।

संयोगवश एक दिन मासखमण के तपस्वी पडिमाधारी मुनि उसके यहां भिक्षा को चले आए। भिक्षादान के समय उसने मुनि की आंख में तृण का टुकड़ा गिरा होने से पानी गिरते देखा। सुभद्रा ने आंख से तृण निकाल दिया। जीभ से तृण निकालते समय उसके ललाट की बिन्दी मुनि के लग गई। सासु को सुभद्रा को बदनाम करने का सुअवसर सहज हाथ लग गया और उसने इसका पूरा उपयोग किया।

वुद्धदास ने भी सुभद्रा के साथ अपना व्यवहार बन्द कर दिया। सुभद्रा ने शपथ पूर्वक सबको वस्तुस्थिति का परिचय कराया पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। हार कर सुभद्रा ने प्रतिज्ञा कर ली कि इस कलंक के निवारण होने पर ही अन्नजल ग्रहण करूंगी, अन्यथा नहीं, ऐसा विचार कर वह प्रभु चरणों में ध्यान लगा कर बैठ गई।

वह तीन दिनों तक लगातार अडोल एक आसन से बैठी रही। उसके अन्तःकरण की निर्मलता और दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर शासनदेवी प्रकट होकर बोली कि मैं प्रसन्न हूं। तुम पारणा करलो। सुभद्रा ने कहा—मां! पारणा तो कलंक दूर होने पर ही करूंगी। देवी ने प्रसन्न होकर नगरी के दरवाजे बन्द कर दिए और आकाशवाणी में कहा—जो सती कच्चे सूत में चालनी बांध कर कूएं से पानी निकाले और दरवाजे पर छींटे तभी नगरी के दरवाजे खुल सकते हैं। राजा ने नगर में इस तरह की घोषणा की और कइयों ने प्रयत्न भी किए पर किसी को सफलता नहीं मिली। आखिर सुभद्रा ने घोषणा स्वीकार की और सासु के आदेश से नगरी के कूप से कच्चे सूत में बन्धे चालणी द्वारा पानी निकाला और दर्शक भीड़ को आश्चर्यचकित करती हुई द्वार पर आई और बोली – "शासनरक्षक देव! एवं नगर के प्रमुख जनों! मैंने तन मन से शील धर्म का पालन किया हो तो यह द्वार खुल जावे।"

जल के छींटे लगते ही नगरी के तीनों दरवाजे खुल गए। सुभद्रा की महिमा सुनते ही दर्शकगण चकित हो गए और राजा ने बड़े सम्मान से सुभद्रा को अपनी बहन बनाकर घर पहुँचाया। सुभद्रा अब परिवार की ही नहीं नगर की पूजनीया बन गई। अन्त समय में आराधना करके उसने अपनी आत्मा का कल्याण किया। यह शील की महिमा है।

• शीलकुलकम् ▶ नर्मदा सुन्दरी

कथांक : ११. ▼ गाथांक : ८.

नारी का आभूषण रूप नही शील है। सुरूप हो या कुरूप, शीलवती का ही संसार में मान और लोकान्तर मे कल्याण होता है। सती नर्मदा सुन्दरी ने इस तत्व को भलीभाति समझा था।

सुयोग से नर्मदा सुन्दरी को ऐसा सुघड़ रूप मिला था जो विरले भाग्यशाली को प्राप्त होता है। इस रूप के चलते आप पर चारों ओर से विपदाएँ मडराने लगी। हार कर कामुकों से अपनी इज्जत बचाने के लिए आपने अपने रूप को मलिन बनाने का निश्चय किया और एक पगली के रूप में इधर-उधर घूमने लगी।

बिना निश्चय के इधर-उधर घूमना और जो मिले वह खाकर रह जाना तथा फटे चिथड़े पहन कर लाज बचाना किन्तु गुण्डों के द्वारा शील पर किसी तरह की आंच नहीं आने देना, नर्मदा सुन्दरी के जीवन का लक्ष्य बन गया था। वह अपनी सुन्दरता को वरदान की जगह अभिशाप मान कर चलती तथा बाहरी मलिनता की ओट मे अन्तःकरण की निर्मलता को बनाए रखती थी। लोग उसकी वेश-भूषा तथा व्यवहार से उसे पागल समझते और उसके प्रति घृणाभाव रखते थे। फलतः उसकी धर्मरक्षा सरलतापूर्वक होती रही। कामियों की नजर में नर्मदा सुन्दरी की सुन्दरता कागज के फूल की तरह मात्र दिखावे की वस्तु थी, उपभोग की नही। वह जहां भी जाती दुत्कारी और फटकारी जाती किन्तु कमनीयता के कारण कान्ता जनोचित सम्मान का पात्र नही बन पाती थी।

उसने अपने रूप को इतना अपरूप बना डाला था कि आंखें उधर आकृष्ट ही नहीं हो पातीं। कदाचित् उधर दृष्टि चली भी जाती तो प्रेमासक्ति के बदले विरक्ति से मन भर उठता। नर्मदा सुन्दरी के रूप और व्यवहार का अनोखा सम्मिश्रण दर्शकों को वरवस उसकी ओर देखने में बाधक बन जाता था। वह बावली बन कर भी अरिहंत और साधु वचनों से कभी विमुख नहीं रही और शुद्ध हृदय से उन वचनों का पालन करती हुई अन्त में अपना कल्याण करने में समर्थ हुई। धन्य है, ऐसी शीलवती सतियों को जो लोकोत्तर सुख की भावना से प्राप्त लौकिक सुखों से मुंह मोड़ कर जीवन को साधनामय बना कर अपना अन्त संभाल लेती है।

नोट—कथाभाग के अभाव में नर्मदा सुन्दरी का विस्तृत परिचय नहीं दे सके हैं।

●●

कलावती

जम्बू द्वीप में संखपुर नाम का एक नगर था जहां संख नाम के राजा न्याय नीति से प्रजा पालन करते थे। उनकी रानी का नाम कलावती था जो पतिपरायणा और शीलवती थी। राजा और रानी परस्पर प्रेम से अपना समय बिताते थे।

संयोगवश एक दिन रानी के भाई जयसेन ने बहन के पहनने के लिए भेंट रूप में एक आभूषण भेजा। रानी ने बड़े प्रेम से भाई के उपहार को स्वीकार किया और उसे पहन कर बड़ी प्रसन्न हुई। उसी समय राजा रानी के पास आए और उसके हाथ में नया आभूषण देख कर शंकित हो गए। तत्क्षण राजा ने सेवकों के द्वारा रानी को वन में भिजवा दिया तथा लौटते समय राणी के हाथ काट कर ले आओ ऐसा आदेश दिया।

सेवकों ने वन में ले जाकर रानी को राजा की आज्ञा सुनाई तो वह दुःख से दब गई किन्तु उसने धैर्य नहीं छोड़ा और अपना हाथ कटवा कर राजा को भिजवा दिया।

रानी गर्भवती थी और समय पाकर विपदा की इस घड़ी में ही उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। मगर हाथ के अभाव में वह अपने शिशु को संभाल सकने में असमर्थ थी, अतः उसके मन में आर्त आने लगा। वह अपने पूर्व के अशुभ कर्मों का चिन्तन करती हुई "परमेष्ठी" के ध्यान में लीन हो गई। सहसा देवकृपा से उसके हाथ पूर्ववत् जुड़ गए। रानी ने वात्सल्य स्नेह से शिशु को दूध पिलाया और आप मन ही मन परमात्मा का गुणगान करने लगी।

शील के प्रभाव से उस निर्जन वन में एक मठवासिनी योगिन आयी और बालक समेत रानी को अपने यहां ले गयी तथा प्रसन्न मन से इन दोनों को देखभाल करने लगी।

इधर राजा ने सेवकों द्वारा दिए हुए कटे हाथ के आभूषण में जब जयसेनकुंवर का नाम पढ़ा तो वह हक्का वक्का हो गया। उसे अपने किए पर बहुत पछतावा हुआ। राजा को विकल देख तथा हालत मालूम कर मंत्री रानी की खोज में वन में गया और वहां एक मठ में पुत्र सहित रानी को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ। मंत्री के द्वारा रानी के मिलने की खबर से राजा का दुःख दूर हुआ और बड़े ठाठ बाठ से सम्मान पूर्वक पुत्र सहित रानी को राजमहल में ले आया। आनन्द के नगाड़े से दिशायें गूंज उठीं तथा सब ओर शील धर्म का जय जयकार होने लगा।

धन्य है, सती कलावती जो इतने बड़े कष्ट के बीच भी धर्मविमुख नहीं हुई और न अकारण कष्ट देने वाले पति के प्रति प्रीति में कोई कसर आने दी। अन्त में अनशन के द्वारा वह शरीर त्याग कर आत्मा का कल्याण करने में सफल हुई।

• •

शीलवती

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में नन्दपुर नाम का एक नगर था, जहाँ महाराज अरिमर्दन न्यायपूर्वक प्रजा का पालन कर रहे थे। यहाँ रत्नाकर नाम का एक सेठ भी रहता था जिसकी पत्नी का नाम श्री था। ये दोनों सुख जीवन बिता रहे थे किन्तु एक पुत्र के अभाव में दोनों अन्तर्मन से दुःखी बने रहते थे।

एक दिन सेठानी ने कहा—स्वामिन्! नगर के बाहर अजितबला नाम की देवी का मन्दिर है। सुनते हैं वह भक्तों को प्रत्यक्ष फल देती है। कई रोगी वहाँ से नीरोग होकर लौटे और कई पुत्रहीनों को भी देवी के प्रसाद से पुत्ररत्न मिले। अतः आपको भी देवी की आराधना करनी चाहिए। सेठानी की बात से सेठ भी सहमत हुआ और उसने देवी का आराधन चालू कर दिया। कुछ काल के बाद देवी प्रसन्न होकर बोली कि तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी। वरदान के प्रभाव से सेठानी गर्भवती हुई और गर्भकाल पूर्ण होने पर सेठ के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम अजितसेन रखा गया।

समुचित लालन पालन के कारण अजितसेन थोड़ी उम्र में ही बड़ा प्रवीण होने लगा। योग्य वय में कलाचार्य के पास रख कर बालक को लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार की शिक्षा दिलाई गई। जब यह तरुण हुआ तो सेठ ने उसके विवाह के लिए योग्य कन्या की तलाश की। परम्परा से पता चला कि मंगलपुरी में जिनदत्त सेठ के यहाँ शीलवती नाम की कन्या बहुत ही सुन्दर और गुणवती है। कन्या के पिता अनुकूल वर की

खोज में चिन्तित थे पर आपके सुपुत्र की चर्चा से वे कुछ आश्वस्त हुए और वर देखने के लिये अपने पुत्र जिनशेखर को मेरे साथ भेजा है।

रत्नाकर इस खबर से अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने जिनशेखर को बुलावा भेजा। व्यापारी की ओर से सूचना पाकर जिनशेखर भी आ पहुँचा। अजितसेन को देख कर उसने सम्बन्ध पक्का कर लिया। शुभ मुहूर्त में अजितसेन का शीलवती के साथ विवाह सम्पन्न हुआ और बड़े समारोह के साथ जिनदत्त से विदा लेकर वह अपने घर आया।

शीलवती केवल शील-सम्पन्न ही नहीं थी वरन् वह बुद्धि एवं गुण-सम्पन्न भी थी। एक दिन दो पहर रात के समय शृगाल का शब्द सुन-कर शीलवती सिर पर घड़ा रख कर बाहर निकली और निश्छल भाव से अपना कार्य कर लौट आयी। ससुर ने असमय में वहू को बाहर जाते देखा तो उसे शंका हो गई।

सवेरा होने पर सेठ ने घर आकर सेठानी से पूछा कि वहू में शील कैसी दीखती है? सासु ने कहा—उत्तम कुल की मर्यादा के अनुसार ही उसका व्यवहार है। यह सुनकर सेठ ने जवाब दिया कि मुझको तो यह ठीक नहीं दिखाई देती। कारण, आज ही मैंने गुप्त रूप से इसको बाहर वड़ी रात बीते जाते देखा है। सेठानी सेठ की बात से सहमत नहीं हो रही थी कि इसी बीच अजितसेन माता-पिता के चरणों में वन्दन देने के लिये वहां आ पहुंचे।

सेठ ने उदास मन से कहा—पुत्र! तुझे क्या कहूं? अपने उत्तम वंश में तेरी बहू कुटिलता सेवन कर रही है, जिसको मैंने आज रात प्रत्यक्ष देखा है। विनयशील-पुत्र ने पिता की बात पर कोई आनाकानी नहीं की और जैसा आप उचित समझें करें, यह कह कर वह चला गया।

सेठ ने बहू को झूठी बात बताकर कहा कि तुम्हारे पिता ने याद किए हैं, इसलिये मेरे साथ चलो। वधू ने सहज ही स्वीकार कर लिया। दोनों रथ पर बैठ कर चल पड़े। रास्ते में एक नदी आयी। सेठ ने बहू

से कहा—पैर से जूती निकाल कर नदी पार उतरना, पर वधू ने वैसा नही किया। सेठ को पक्का विश्वास हो गया कि लडकी अविनीत है। कुछ दूर आगे चल कर सेठ ने एक मूंग का खेत देखा और बोला कि खेत वाले को बहुत मूंग होगा किन्तु बहू बोल उठी कि यदि कोई इसे खा न जाय तो आपकी बात सत्य हो सकती है। सेठ ने समझा बहू बहुत असम्बद्ध बोलती है।

आगे चलते हुए दोनो एक समृद्धशाली नगर के पास पहुँचे, पर वहा भी दोनों के विचार मेल नही खा सके। सेठ ने एक जर्जर सुभट को देखकर उसके शौर्य की प्रशसा की तो शीलवती ने कहा—यह शूर नहीं कायर है। यह मार कर नही मार खाकर आया है। सेठ ने समझा कि बहू मात्र दूसरो का दोष ही देखती है। इस प्रकार विचार करते हुए वे दोनो एक वटवृक्ष के नीचे पहुँचे। सेठ ने वहा रथ को खडा किया और छाया मे विश्राम करने को बैठा। वहू वृक्ष से दूर धूप मे जाकर बैठ गई। सेठ के बुलाने पर भी वह छाया मे नही आयी। इस पर सेठ ने विचारा कि कुशिक्षित अश्व की तरह वहू अविनीता है। सेठ ऐसा सोच रहे थे कि अकस्मात् वहा शीलवती का मामा आ पहुँचा और वह दोनो को सम्मान-पूर्वक अपने घर ले गया और भोजन के लिए अत्याग्रह किया। सेठ ने वहाँ नही खाया तो उसने पाथेय के रूप मे करव का भोजन रथ मे बाध दिया।

सेठ वधू के साथ आगे चल पडा और कुछ दूर चलने के बाद एक कैरवृक्ष के नीचे आकर सो गया। वधू करबा लेकर खाने लगी। इतने में एक कौए की आवाज उसे सुनाई पडी। आवाज सुनकर वहू बोली कि मैं तेरी बोली समझती हू किन्तु एक बार की बात से तो पति का वियोग हो गया, अब फिर तुम्हारी बात मानूं तो मां-बाप से मिलना भी मुश्किल होगा।

सेठ ने वहू की बात को सुना और बोल उठा कि ऐ विवेकहीना! तुम इस प्रकार क्या बोल रही हो? इस पर वहू बोली—पिताजी! नीति-वानों ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य के गुण दोष के लिए होते हैं। तोता,

मैना, मधुर आवाज और ज्ञान के कारण पिंजरे में बैठे रहते हैं। मेरी भी यही स्थिति है। मैंने बचपन में पशुपक्षियों के स्वर का ज्ञान हासिल किया था, वह आज मेरे लिए दुःखदायी हो रहा है।

वहू की बात सुनकर सेठ चौंक गया और पास जाकर बोला कि देवी! मुझ से भूल हुई, तुम मेरा अपराध क्षमा करो। वहू ने कहा— पिताजी! जिस रात की घटना से आपको मुझ पर शक हुआ, उस रात मैं एक शृगाल की आवाज से बाहर निकली थी। सियार ने कहा था कि नदी में एक मुर्दा जा रहा है। उसके वदन पर लाख की कीमत का आभूषण है। मैंने लाभ-दृष्टि से नदी में जाकर उस आभूषण को ले लिया और नदी के किनारे की भूमि में गाड़ दिया और पुनः घर आकर अपनी शय्या पर सो गई। इस पर आपने मुझे दुश्चरित्रा समझा। यह मेरे कर्म का ही दोष है। अभी भी यह काग कह रहा है कि पैर के नीचे दश लाख स्वर्ण मुद्राएँ हैं किन्तु आपकी नापसन्दगी के कारण मैंने उसको जवाब दिया कि तेरी बात पर चलने से तो अब घर जाना भी मुश्किल होगा।

सेठ ने परीक्षा के रूप में पैर के नीचे की भूमि को खोदा तो वहाँ चार स्वर्ण कलश प्राप्त हुए। यह जान कर सेठ को वड़ा पछतावा हुआ कि साक्षात् लक्ष्मीस्वरूप वधु का उसने जी खोलकर अपमान किया। सेठ ने अपराध की क्षमा-याचना कर रथ को घर की ओर मोड़ लिया। वधू ने पहले कही हुई बातों का भी आशय समझाया जिससे सेठ को वड़ी खुशी हुई और उसने सम्मानपूर्वक वहू को गृहस्वामिनी के पद पर आसीन किया।

इधर महाराज अरिमर्दन ने अजितसेन की बुद्धिपटुता, व्यवहार-कुशलता और न्यायपरायणता से प्रसन्न होकर उसको अपना मुख्य मन्त्री वना दिया। सेठ और सेठानी का स्वर्गवास हो चुका था, अतः अजितसेन घर और राज्य दोनों का कार्य संचालन करता रहा।

एक दिन महाराज सीमावर्ती देशविजय की इच्छा से अपनी सेना के संग बाहर निकले और उन्होंने अजितसेन को भी चलने के लिए कहा।

अजितसेन को चिन्ता थी कि घर में शीलवती को अकेली छोड़ कर कैसे जाऊँ ? शीलवती ने यह जानकर पतिदेव से कहा कि आप महाराज की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करें। मेरी चिन्ता आप नहीं करें। देव या दानव भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, मनुष्य की तो बात ही क्या ? यह कहकर उसने अजितसेन के गले में एक माला डाल दी और बोली कि जब तक यह नहीं कुम्हलाए, आप समझना कि मैं सब तरह से ठीक हूं।

शीलवती की बात से प्रसन्न होकर अजितसेन राजा के साथ चल पड़ा। सूखी अटवी में अजित के गले में खिली हुई माला देख कर राजा ने पूछा—क्या कारण है कि तुम्हारे गले की माला सतत ताजी ही बनी रहती है। मंत्री ने इसे शीलवती के शील का प्रभाव बतलाया। राजा को एवं उसके अन्य पार्षदों को इस पर विश्वास नहीं हुआ। एक ने शीलवती के शील खण्डन की प्रतिज्ञा की तो राजा ने उसे धन देकर विदा किया।

उस धूर्त ने अवधूत का रूप बना कर नन्दनपुर में शीलवती के घर के पास आसन जमाया, और मनोहर गीत गा कर तथा भद्दे इशारों से शील-वती के प्रति अपनी कामभावना दर्शायी। सती ने समझा कि इसके भाव अच्छे नहीं है और निश्चय यह मेरा शील खण्डन करना चाहता है। सती ने जरा उसकी ओर नजर उठायी तो उसे प्रतीत हुआ कि अब शीघ्र मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। उस अवधूत ने शीलवती के पास अपनी दूती भेजी। वह शीलवती के पास आकर कहने लगी – बहन ! तेरा स्वामी राजा के साथ गया है न मालूम वह कब लौटे ? तुम कब तक उसके भरोसे बैठी रहोगी।

दूती की बात सुनकर शीलवती बोली कि कुलीन स्त्रियां पर पुरुष की संगति तो क्या उससे बातें करना भी उचित नहीं समझती। हार कर दूती लौट गई फिर भी उसने आने और समझाने का क्रम नहीं तोड़ा।

एक दिन शीलवती ने दूती से कहा कि तुम अपने प्यारे को एक लाख सुवर्ण मुद्रा लेकर पांचवें दिन मेरे पास भेज देना। दूती ने आकर अशोक अवधूत को सारी बातें बतायी तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने आधे सोनैये

पहले ही भिजवा दिए। इधर शीलवती ने घर में गड्ढा खोद कर उस पर तन्तुओं से बना हुआ पलंग बनवा कर उसे चद्दर से ढंक दिया।

पांचवें दिन जब अशोक सौनैयों के संग उसके घर आया तो शीलवती ने उसे पलंग पर बैठने को कहा और आप स्वागत के लिए कोई सामान लेने को गई। तब तक पलंग अशोक के बैठने से टूट गया और वह खड्डे में गिर पड़ा। शीलवती डोल के द्वारा गड्ढे में उसका भोजन पहुंचाती पर उसके लिए तो यह दुःख असह्य हो गया।

एक महीने का समय बीत गया तो राजा ने सोचा कि अशोक की खबर करनी चाहिए। उन्होंने दूसरे मित्र रतिकेलि को भेजा तो उसकी भी वही दशा हुई। कुछ समय के बाद तीसरा मित्र कामांकुर आया तो वह भी अपने दो मित्रों के साथ नारकीय यातना भोगने लगा। अन्त में ललितांग कुमार आया और वह भी तीन में चौथा बन गया।

एक दिन चारों ने मिल कर शीलवती से कहा—देवि! हम सब ने अपनी मूर्खता का फल पालिया – अब कृपा कर हमें इस अन्धकूप से बाहर निकाल दो। इस पर शीलवती बोली – यदि तुम सब मेरी बात मानो तो मैं बाहर निकाल सकती हूं। सती जिस समय उन सबसे बात कर रही थी संयोगवश उसी समय अजितसेन भी वहां आ पहुंचा। सती ने सारी बातें उन्हें कह सुनायीं और राजा को निमन्त्रण देने का विचार किया।

अजितसेन का निमन्त्रण पाकर सपरिवार राजा मंत्री प्रमुख के घर आ पहुँचा। शीलवती ने चारों को कूंए से निकाल कर एक आसन पर बैठा दिए थे। भोजन की सामग्री भी पहले से बनाकर एक ओर सुरक्षित रखी थी। आतिथ्य सत्कार के बाद राजा ने मंत्री से कहा—प्रधान! तुम्हारे यहां भोजन की तैयारी तो मालूम नहीं हो रही है फिर हमें क्या खिलाओगे? मंत्री ने कहा—स्वामिन्! मेरी पत्नी के चार यक्ष अधीन में हैं। वे समय पर इच्छित वस्तु उपस्थित कर देते हैं। ऐसा कह कर मंत्री ने देखते ही देखते मन चाहे भोजन परोस कर राजपरिवार को संतुष्ट किया।

भोजन और आतिथ्य से प्रसन्न होकर राजा बोला कि ऐसे यक्ष तो अपने पास होना चाहिए जिससे मार्ग में सेना के लिए भोजन पानी की व्यवस्था हो सके। शीलवती ने राजा की मांग पूर्ण करने के लिए उन चारों कपटी मित्रों को एक पेटी में बिठा दिए और कहा – दोपहर में जब राजा भोजन मांगें तब तक तुम लोग बिना बोले रहना। अन्यथा जान पर खतरा है। दुःख मुक्ति के लिए चारों ने विवश होकर यह सब मंजूर कर लिया। राजा पेटी लेकर चले और रास्ते में पड़ाव पर पेटी खोलकर यक्ष से भोजन मांगा तो वह बोले–महाराज ! हम तो खुद ही भूख के मारे तड़प रहे हैं।

राजा ने सब की आवाज पहचान ली और शीलवती की धर्मदृढ़ता पर प्रसन्न होकर उसे धर्म बहिन बना लिया एवं अतिशय सम्मानित किया।

चिरकाल तक शीलवती शील धर्म का पालन करने के साथ चतुर्विध संघ की सेवा करती रही। अन्त में समाधिभाव में आयु पूर्ण कर स्वर्ग की अधिकारिणी बनकर जन्मान्तर में कर्मक्षय कर मोक्षगामिनी हुई। शील का प्रभाव लोक और लोकान्तर दोनों में हितकारी होता है, यह शीलवती के कथानक से भलीभांति समझा जा सकता है।

• •

सुलसा

अढ़ाई हजार वर्ष पहले मगध देश में राजगृही नाम की विशाल नगरी थी। जहां श्रेणिक नाम का एक प्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी एक रानी का नाम सुनन्दा तथा पुत्र का नाम अभयकुमार था। अभयकुमार चारों बुद्धि का निधान तथा राजा का प्रधान सचिव था।

उसी राजगृही में नाग नाम का एक रथिक था जो कि राजा का सेवक था। नाग के सुलसा नाम की एक भार्या थी जो सभी गुणों से युक्त थी। दोनों स्त्री-पुरुष परम प्रेम से जीवन व्यतीत करते थे। नाग ने गुरु के समक्ष दूसरा विवाह नहीं करने का नियम लिया था और सुलसा ने भी मिथ्यात्व का परित्याग किया था।

किसी समय नाग रथिक ने सेठ के पुत्रों को आंगन में खेलते देखा। वे देखने में बड़े सुन्दर थे। उन्हें देखकर नाग रथिक को पुत्र के विना अपना घर सूना प्रतीत हुआ और वह पुत्र-प्राप्ति के लिए मिथ्या-दृष्टि देवों की आराधना करने लगा।

सुलसा ने पति को समझाया कि नाथ ! पुत्रादि की प्राप्ति तो कर्म के अनुसार होती है, इसमें कोई क्या कर सकता है। मालूम पड़ता है कि मुझ से कोई सन्तान नहीं होगी। अतः आप दूसरा विवाह करलें। नाग सारथि यह सुनकर बोला कि मैं दूसरा विवाह नहीं करूंगा। मुझे तो तुम से पुत्र चाहिए।

यह सुनकर सुलसा बोली कि सन्तान आदि का अभाव अन्तराय कर्म के उदय से होता है। उसको दूर करने के लिये हमें धर्म-कार्य करना चाहिये। धर्म से सब कुछ मिलता है। धर्म ही कल्पवृक्ष, कामधेनु तथा चिन्तामणि है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो धर्म के द्वारा न मिलती हो। भोले प्राणी धर्मविमुख बनकर इधर-उधर व्यर्थ भटकते हैं।

किसी वस्तु के अभाव में खेद करना ठीक नही। उसकी प्राप्ति के लिए हमें शुभ-कर्म, उपार्जन करना चाहिए। सुलसा को बातों को सुनकर नाग सारथी का मन धर्म की ओर हो गया और उस दिन से दोनो और अधिक धर्मकार्यों में रस लेने लगे।

एक बार, देवलोक में मनुष्यलोक की चर्चा चली तो इन्द्र ने सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा कि राजगृही नगरी में नागसारथि दपती धर्म में ऐसे दृढ़ हैं कि देव दानव या मनुष्य कोई उन्हें धर्मविचलित नही कर सकते। यह सुनकर हरिणगवेषी देव सुलसा की परीक्षा के लिए मर्त्यलोक मे आ गया। उसने दो साधुओं का रूप बनाया तथा सुलसा के घर पर आया।

युगल साधुओं को घर आया देखकर सुलसा बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि आज मेरे अहोभाग्य हैं जो कि भिक्षा के लिये साधु घर पधारे है। वंदना नमस्कार के बाद सुलसा हाथ जोड़ कर साधुओं से बोली कि महाराज! आपने पधार कर मेरा घर पवित्र किया, अब कुछ प्रतिलाभ देकर जीवन को सफल बनावे।

इस पर साधु बोले कि : तुम्हारे घर में लक्षपाक तेल है। उग्र-विहार से थके ग्लान संतों के उपचार के लिये उसकी आवश्यकता है। यह सुनते ही हर्ष-विभोर हो सुलसा तेल लाने के लिये घर के भीतर गई और ज्यों ही तेल के बर्तन पर हाथ रखा कि वह हाथ से फिसल कर नीचे गिर पड़ा। इसी प्रकार उसके घर के दूसरे और तीसरे बर्तन भी गिर कर फूट गए किन्तु इस हानि से सुलसा के मन में थोड़ा भी खेद नहीं

हुआ। वाहर आकर उसने साधु से सारा हाल कह सुनाया तथा तेल न दे सकने के लिये क्षमा मांगने लगी।

यह देखकर साधु-वेषधारी देव प्रसन्न हो गया तथा अपने असली रूप में प्रकट होकर बोला कि इन्द्र के मुंह से तेरी तारीफ सुनकर मैं तेरी परीक्षा लेने आया था। वास्तव में तुम परीक्षा के अनुरूप हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूं और जो तुम्हारी इच्छा हो, हम से मांग लो।

यह सुनकर सुलसा वोली—देव ! आप सब के हृदय की वात जानते हैं फिर मैं क्यों कुछ कहूं ?

देव ने ज्ञान द्वारा उसके पुत्र-प्राप्ति मनोरथ को जानकर उसको बत्तीस गोलियां दी और कहा—एक एक गोली खाती जाना। प्रत्येक गोली एक एक पुत्र देगी। जरूरत पड़ने पर मेरी याद करना और मैं स्मरण करते ही उपस्थित हो जाऊँगा। यह कह कर देव अन्तर्धान हो गया।

सुलसा ने सोचा कि बत्तीस पुत्र होने से तो धर्म कार्य में बाधा पड़ेगी। यदि मेरे बत्तीस लक्षणों वाला एक ही पुत्र हो तो अच्छा है। ऐसा सोच कर उसने बत्तीसों गोलियां एक साथ खालीं। गोली के प्रभाव से सुलसा के बत्तीस गर्भ एक साथ रह गए और पेट में भयंकर वेदना होने लगी। वेदना की शान्ति के लिए सुलसा ने देव का स्मरण किया।

देव ने प्रकट होकर कहा यह तुमने अच्छा नहीं किया। अब तो तुम्हें बत्तीस पुत्रों का एक साथ जन्म होगा और उनमें से एक की भी मृत्यु होने से सभी एक साथ मर जाएँगे।

यह सुनकर सुलसा बोली – प्रत्येक प्राणी को अपने किए हुए कर्म भोगने ही पड़ते हैं। आपने तो मेरे लिए अच्छा ही किया किन्तु मेरे अशुभ कर्मोदय के कारण मुझसे गल्ती हो गई। आप यदि इस वेदना को शान्त कर सकते हो तो शान्त करें। दैव ने उसकी वेदना को शान्त कर दिया।

समय पूरा होने पर उसने शुभ लक्षणों वाले बत्तीस पुत्रों को जन्म दिया। बड़ी धूम धाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया तथा बारहवें दिन

सबके अलग २ नाम रक्खे गए। नाग रथिक पुत्रों के मधुर शब्द, रूप एवं क्रीड़ाओं को देखकर हर्ष विभोर हो गया। समय आने पर सबको धर्म एवं व्यवहार की समुचित शिक्षा दी गई तथा वे सब अपने २ विषयों में प्रवीण बन गए। युवा अवस्था में सबको कुलीन एवं गुणवती कन्याओं के संग विवाह कर दिया गया।

एक बार राजा श्रेणिक के पास एक संन्यासी वैशाली के राजा चेटक की लड़की सुज्येष्ठा का चित्र लेकर आया। चित्र को देखते ही राजा का मन उस लड़की से विवाह करने के लिए मचल पड़ा। पिता की इच्छा पूर्ति के लिए अभयकुमार ने जो कि राज्य का मंत्री भी था, व्यापारी का वेष बनाकर वैशाली में राजमहल के नीचे दुकान कर ली तथा दुकान पर राजा श्रेणिक का एक चित्र लगवा दिया। राजकुमारी की दासी नित्य वहां सामान खरीदने के लिए आती थी। चित्र को देख कर एक बार दासी ने जिज्ञासा की तो अभयकुमार ने बड़ी आनाकानी के बाद बता दिया कि यह राजा श्रेणिक का चित्र है।

दासी ने सुज्येष्ठा से उस चित्र की बड़ी तारीफ की तो राजकुमारी उससे विवाह करने के लिए तत्पर हो गई। दासी ने अभयकुमार को यह बात बताई। अभयकुमार ने वैशाली से लेकर राजा श्रेणिक के महल तक एक सुरंग तैयार करवाया और राजा को कहलवाया कि चैत्र शु० द्वादशी के दिन सुरंग के द्वारा आप यहां तक आजावें।

इधर सुज्येष्ठा को भी यह खबर दे दी गई थी। नियत दिन में सुरंग के द्वारा श्रेणिक वैशाली आए। सुज्येष्ठा पहले से ही मौजूद थी। वह श्रेणिक के साथ जाने के लिए तैयार होने लगी। उसकी छोटी बहन चेलना भी श्रेणिक से विवाह करने तथा उसके संग जाने के लिए मचल पड़ी। कारणवश सुज्येष्ठा चेलना को सुरंग के मुंह पर छोड़ कर थोड़ी देर के लिए पीछे लौटी इतने में श्रेणिक सुलसा के बत्तीस पुत्रों के साथ वहां आ पहुंचा और चेलना को ही सुज्येष्ठा समझ कर उसे रथ पर बिठा कर राजगृही ले आया।

सुज्येष्ठा लौट कर आयी तो चेलना वहां नहीं थी। उसने समझा कि वह अकेली चली गई है। उसने रोते चिल्लाते हुए महाराज को इसकी खबर करवायी। पुत्रीहरण के नाम पर महाराज ने श्रेणिक का पीछा किया। सुलसा के पुत्रों ने राजा चेडा को बीच में ही रोक लिया। लड़ाई शुरु हो गई और उसमें सुलसा का एक पुत्र मारा गया। एक के मरते ही सभी मर गए। राजा ने जब सुज्येष्ठा कह कर चेलना को बुलाया तो वह बोली कि मैं चेलना हूं। अब कोई दूसरा उपाय नहीं था, अतः हार कर राजा ने समसमारोह चेलना के साथ विवाह कर लिया।

सुलसा अपने पुत्रों की मृत्यु से बहुत दुःखी हुई। अभयकुमार नागरथिक के घर आया तथा सुलसा को समझाया कि यहां जो आया है, वह अवश्य जाएगा। नष्ट होने वाली वस्तु के लिए शोक करना व्यर्थ है। इस अविवेकिता पूर्ण विलाप से कुछ लाभ नहीं होगा। इसलिए धर्म पर पूर्ण निष्ठा रखकर धैर्य से काम लो। अभयकुमार की बातों से सुलसा पूर्ण आश्वस्त हो गई।

कुछ दिनों के बाद भ० महावीर चम्पानगरी में पधारे। नगरी के बाहर समवसरण में भगवान ने धर्मोपदेश दिया जिससे विद्याधारी अम्बड़ श्रावक बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा—प्रभो ! मेरा जन्म सुफल हो गया, अब मैं राजगृही जाता हूं। भगवान् ने कहा – राजगृही में सुलसा नाम की श्राविका धर्म में परम दृढ़ है। यह सुनकर अम्बड ने सोचा कि उसमें ऐसा कौनसा गुण है जिसके लिए भगवान् सुलसा की प्रशंसा करते हैं। मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूंगा। यह सोच कर उसने संन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा – देवि ! मुझे भोजन दो, इससे तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने कहा - मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूं।

वहां से अम्बड़ लौट चला और नगर के बाहर आकाश में पद्मासन लगा कर बैठ गया। लोग उसे देख कर आश्चर्य चकित होते तथा उसे भोजन के लिए आमन्त्रित करते किन्तु उसने किसी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। उसने कहा—मैं केवल सुलसा के घर का आहार कर सकता

हूं। लोग यह सुनकर सुलसा को बधाई देने आए तथा उसकी बड़ी २ तारीफें करने लगे।

यह सुनकर सुलसा बोली कि वह संन्यासी नहीं ढोंगी है। लोगों ने उस संन्यासी को यह बात सुना दी। अम्बड ने सोचा कि निश्चय सुलसा सम्यक्त्व से ओतप्रोत है जिससे कि महान अतिशय देखकर भी उसका मन डंवाडोल नहीं हुआ।

• •

महामंत्री शकडाल के ज्येष्ठ पुत्र स्थूलभद्र की जवानी के लम्बे बारह वर्ष पाटलीपुत्र की राजवेश्या रूपकोशा के संग बीते। महामंत्री ने स्वयं इन्हें रूपकोशा के घर व्यवहारनीति सीखने को भेजा था मगर ये वहां मधुप की तरह उसके रूप – पराग पर उलझकर सब कुछ भूल गए। आमोद प्रमोद में समय बीतने लगा। स्थूलभद्र अपने लक्ष्य से सर्वथा दूर हट गए। रूपकोशा के सिवा संसार में उनका कोई प्रिय नहीं रहा।

पिता की मृत्यु की खबर पाकर ये अपने घर आए। राजा ने इन्हें मंत्री पद संभालने को कहा किन्तु संसार के सम्बन्धों की अनित्यता का ख्याल कर ये उधर नहीं झुके और आचार्य संभूतिविजय के पास दीक्षित हो गए। स्थूलभद्र के त्यागी बन जाने पर उनके छोटे भाई श्रेयक ने मंत्री का पद संभाला।

किसी समय महामुनि स्थूलभद्र गुरु के चरणों में संयम तप की आराधना करते हुए संयोगवश पाटलीपुत्र चले आए। वर्षाकाल निकट समझ कर उन्होंने गुरुदेव से रूपकोशा के घर चातुर्मास करने की प्रार्थना की। गुरु ने योग्य समझ कर स्थूलभद्र को आज्ञा प्रदान करदी। ये रूपकोशा के घर आए और उससे चित्रशाला में रहने की अनुमति चाही।

रूपकोशा स्थूलभद्र को देख कर बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें सहर्ष रहने की आज्ञा प्रदान करदी। रूपकोशा पहले की तरह स्थूलभद्र को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती थी। इसके लिए उसने कई आकर्षक उपाय काम

में लिए किन्तु संकलपवली स्थूलभद्र साधु नियम के पालन में मेरु की (अचल वने रहे । उन्होने रूपकोशा के सारे प्रयत्नों को वेकार कर दिय आखिर स्थूलभद्र के तपःतेज के सामने रूपकोशा ने पराजित होकर श्रावि धर्म स्वीकार कर लिया ।

चातुर्मास के पश्चात् जब स्थूलभद्र गुरु की सेवा में पहुँचे तो गुरु ने सिंह-गुफा में चातुर्मास करने वाले मुनि को केवल धन्य और दुष्कर कहा पर स्थूलभद्र को "दुष्करं, दुष्कर अति दुष्कर" कह कर सम्बोधन किया। कारण सिंह गुफा में जान जाने का डर रहता है, व्रत टूटने का नही और वेश्यागृह में धर्म बचाना कोई आसान नही, खास कर भुक्तभोगी के लिए तो यह और भी महा मुश्किल का काम है। स्थूलभद्र ने इस महा मुश्किल को आसान बनाया था।

कुछ समय के बाद देश में एक महान् दुष्काल आया जो बारह वर्षों तक रहा। इस अवधि मे देशवासियों को महान सकट से होकर गुजरना पड़ा, भिक्षा की दुर्लभता से साधुओं में भी दुर्वलता आ गई और उनका पठन-पाठन छूट गया। इससे आगमपाठी मुनियों मे श्रुतवल क्षीण होने लगा। फलस्वरूप श्रमण संघ ने एकत्र होकर पाटलिपुत्र मे आगमों की वाचना की ।

पाटलिपुत्र की वाचना मे एगारह अगो का सकलन कर लिया गया पर दृष्टिवाद के ज्ञाता आचार्य के न होने से उसका सकलन नही हो सका। संघ को पता चला कि भद्रवाहु, जो दृष्टिवाद के ज्ञाता हैं, अभी नेपाल है। साधु भेज कर उनको नेपाल से बुला लेना चाहिए। सघ की आज्ञा से दो साधु भद्रवाहु के पास गए। उस समय वे महाप्राण ध्यान के साधन में लीन थे, अतः वाहर जाने को तैयार नही हुए। उन्होने सघ को सदेश दिया कि साधुगण हमारे पास आकर यहा नियमों के अनुकूल वाचना करें तो मैं दे सकता हूं ।

संघ ने स्थूलभद्र के कथनानुकूल ५०० पाच सौ साधु दृष्टिवाद के अभ्यास हेतु भद्रवाहु की सेवा में भेजे पर वाचना की कठिनता और परीषह

की अधिकता के कारण स्थूलभद्र को छोड़ कर सभी साधु वहां से चले आए । स्थूलभद्र अम्लान भाव से अध्ययन करते रहे और दश पूर्व का अभ्यास समाप्त होने पर पाटलिपुत्र आए ।

पाटलिपुत्र में स्थूलभद्र की दीक्षिता बहनें उद्यानस्थित गुरु को वन्दन करने आई थीं । आचार्य को नमस्कार कर सतियों ने मुनि स्थूलभद्र के लिए जिज्ञासा की । आचार्य ने कहा – वे यहीं आस पास कहीं चिन्तन मनन कर रहे होंगे । साध्वियां दर्शन करने को गईं तो स्थूलभद्र को सिंहरूप में देखकर चौंक गई और लौट कर आचार्य के पास पुकार की – देव ! आर्य स्थूलभद्र सिंह के द्वारा विनष्ट कर दिए गए हैं । हम सब अभी २ सिंह को देख कर आई हैं । आचार्य समझ गए कि स्थूलभद्र ने बहनों को चमत्कृत करने को विद्या का प्रयोग किया है । दूसरे दिन उन्होंने स्थूलभद्र की वाचना बन्द करदी । स्थूलभद्र ने पुनः ऐसी भूल न करने की प्रार्थना करते हुए क्षमा याचना की पर आचार्य ने दश पूर्व के बाद का ज्ञान मात्र मूलरूप में बतलाया । इस प्रकार स्थूभद्र दश पूर्व के सूत्रार्थ ज्ञाता रहे । स्थूलभद्र की शीलसाधना देव देवेन्द्र के भी मन को हिलाने वाली रही । धन्य है परम योगी आर्य स्थूलभद्र को और उनकी शीलसाधना को ।

• •

वज्रस्वामी

अवन्ति देश के "तुम्बवन" जनपद मे धनगिरि नाम का एक सेठ-पुत्र रहता था, जो बचपन से ही विरक्त भाव वाला था। माता-पिता उसका विवाह करना चाहते किन्तु वह दीक्षा लेने की भावना बता कर उनसे अलग हो जाता था।

सयोगवश धनपाल सेठ की कन्या सुनन्दा के साथ शुभ मुहूर्त मे धनगिरि का विवाह हो गया। कुछ दिनो के बाद सुनन्दा ने गर्भ धारण किया तो धनगिरि ने यह कह कर कि "अब यह बालक तुम्हारा अवलम्बन होगा"—स्वयं विरक्त हो गया और सिंहगिरि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करली जहा सुनन्दा के भाई ने पहले ही दीक्षा ग्रहण की थी।

उधर गर्भकाल बीतने पर सुनन्दा को बालक हुआ। पुण्य के प्रभाव से बालक सब को प्रिय लगता था। किन्तु निमित्त पाकर उसको जाति-स्मरण हो गया और वह रात-दिन रोकर माता को हैरान करने लगा। छः महीने भी नही बीते कि सुनन्दा बालक से परेशान हो गई।

सुयोग से आचार्य सिंहगिरि अपने शिष्य सहित "तुम्बवन" पधारे। धनगिरि ने भिक्षा मे जाने की अनुमति मागी और आचार्य ने स्वीकृति दे दी। भिक्षा मे भ्रमण करते हुए मुनि धनगिरि जब सुनन्दा के घर पर पहुँचे तो सुनन्दा ने कहा—आज तक मैंने इस बच्चे की रक्षा की, अब आप अपना संभालो। ऐसा कहकर उसने भिक्षा के रूप में बालक धनगिरि की झोली मे दे दिया।

धनगिरि बालक को लेकर आचार्य के पास आए। आचार्य बालक को देखकर बहुत खुश हुए और बोले कि फूल से कोमल और वज्र से बढ़कर भी कठोर इस बालक को कहाँ से लाये हो? आचार्य ने भार देखकर बालक का नाम वज्र रख दिया तथा पालने के लिए उसे साध्वियों को सौंप दिया। साध्वियों ने भी उसे शय्यातरी के अधीन कर दिया।

कुछ दिनों के बाद सुनन्दा को फिर मोहोदय हुआ और उनने अपना पुत्र लेना चाहा। शय्यातरी ने साफ कह दिया—बच्चा नहीं मिलता, यह तो मेरी अमानत में है। विवाद बढ़ते-बढ़ते राजा के पास पहुँचा। राजा ने कहा—कल दोनों आवें, बच्चा जिनके पास जाना चाहेगा, उसी का माना जाएगा।

दूसरे दिन निर्णय के लिए संघ के साथ गुरु और दूसरी तरफ नागरिक लोगों के साथ सुनन्दा अपने-अपने बालप्रिय साधन लेकर आ बैठे। बालक सामने बिठाया गया। राजा ने पहले सुनन्दा से बालक को बुलाने के लिए कहा मगर लाख लालच दिखाने पर भी, बालक माता के पास नहीं आया।

राजा की आज्ञा से जब शय्यातरी ने बालक से कहा—वज्र! यदि मेरे पास आना चाहते हो तो कर्म-रज को पूंजने के लिए इस रजोहरण को स्वीकार करो। यह सुनते ही बालक ने रजोहरण ले लिया। राजा की अनुमति से बालक संघ को दे दिया गया। कुछ दिनों के बाद वज्र को दीक्षा दे दी गई।

अब वज्रमुनि आठ वर्ष के होने से आचार्य के साथ विहार करने लगे। रास्ते में उनके पूर्वभव के मित्र जृंभकदेव जा रहे थे। जृंभक ने वज्रमुनि को निमन्त्रित किया किन्तु वज्र ने अपनी अलौकिक बुद्धि से समझ लिया कि ये देव हैं और उनके आहार को ग्रहण नहीं किया। देव ने प्रसन्न होकर वज्रमुनि को वैक्रिय शक्ति दे दी।

दूसरी बार अवन्ति नगरी में पुनः देवों ने उनकी परीक्षा ली और ये उसमें भी सफल हुए। फलतः देवों ने उन्हें आकाशगामिनी विद्या

दे दी। दूसरे शिष्यों को पढ़ते हुए सुनकर वज्रमुनि ने ग्यारह अंगों का ज्ञान स्थिर कर लिया। इसी प्रकार सुनकर उन्होंने पूर्वों का भी बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक बार आचार्य शौच-निवृत्ति के लिए बाहर गए हुए थे और दूसरे साधु भी गोचरी के लिये उपाश्रय से बाहर थे। इसी बीच वज्रस्वामी छोटे-छोटे साधुओं को वाचना देने लगे। आचार्य ने आकर जब इन्हें वाचना देते देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और साधुओं की वाचना का कार्य वज्रमुनि को दे दिया तथा आप वहां से विहार कर गये। सभी साधु उनकी वाचना से अति प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि अगर कुछ दिन आचार्य और नहीं आएँ तो वज्रमुनि से वाचना लेते रहें। धीरे-धीरे वज्रमुनि दस पूर्वधारी हो गए।

आचार्य के स्वर्गवास के बाद वज्रस्वामी आचार्य बने। अनेक साधु-साध्वियों ने उनके पास दीक्षा ली। शास्त्रों के प्रचुर ज्ञान तथा विविध लब्धियों के कारण उनका प्रभाव दूर-दूर तक फैल गया। मनुष्य तो क्या देव भी उनकी सेवा में रहने लगे। अनेक बार सुन्दर स्त्रियों से ललचाये जाने पर भी उन्होंने आजीवन निर्मल शील का पालन किया। धन्य है ऐसे वीर योगी को।

• •

सेठ सुदर्शन

चम्पानगरी का सेठ सुदर्शन शील धर्म की साधना में अनुपम आदर्श उपस्थित कर चुका है। वह श्रावक - धर्म के बारह व्रतों की भलीभांति आराधना करने वाला था। उसके उज्ज्वल व्यवहार एवं धर्ममय आचार से सभी पुरवासी जन प्रभावित थे और हृदय से उसका सम्मान करते थे।

सेठ की प्रामाणिकता व सुशीलता से राज्य पुरोहित की उनके साथ गाढ़ी दोस्ती थी। पुरोहित समय २ पर सुदर्शन से सामाजिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक विचार विमर्ष कर संतोषानुभव करता था। कभी २ वे दोनों विचार चर्चा में इस तरह उलझ जाते कि रात में समय पर सोने की भी सुध नहीं रहती।

एक दिन पुरोहित की पत्नी ने पति से देरी से आने का कारण पूछा तो पुरोहितजी ने कहा - प्रिय मित्र सुदर्शन से बात करने बैठ गया। उसके शान्त सुरम्य मुखमण्डल और मृदु, प्रिय संभाषण को सुन कर सुध खो बैठा और वहाँ से उठने का मन ही नहीं हुआ। किसी तरह मन मसोस कर अभी वहीं से आ रहा हूं। सेठ बड़ा ही गुणवान्, विद्यावान् और रूपवान् है। वस्तुतः जो एक बार उसकी संगति में आता निश्चय उसका हुए बिना नहीं रहता।

पुरोहितानी ने सुदर्शन के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी तो वह एक बार उससे मिलने को उतावली हो उठी, एक दिन उसने पुरोहित की बीमारी का बहाना कर सुदर्शन को अपने यहां बुलाया और कामराग के वशीभूत

होकर उसने सुदर्शन को नारी-माया-जाल में डालना चाहा मगर धर्म-धुन का पक्का धीर सुदर्शन युक्तिपूर्वक त्रियाजाल से बेदाग बच गया।

एक बार किसी महोत्सव में पुरोहितानी कपिला, महारानी अभिया के साथ गई हुई थी। वहां उसकी नजर एक रथ पर पड़ी जिसमें एक महिला अपने पांच देदीप्यमान पुत्रों के साथ बैठी हुई थी। उन बालकों को देखकर कपिला ने पूछा कि ये देवोपम बाल किस भाग्यशाली के हैं ? यह सुनकर रानी बोली — क्या तुम नहीं जानती कि ये सेठ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा और उसके यह पांचों पुत्र हैं। कपिला घृणा से भौं सिकोड़ते हुए बोली कि क्या पौरुषहीन के भी पुत्र होते हैं ?

इस पर रानी ने पूछा कि तुम कैसे जानती हो कि सुदर्शन पौरुषहीन है। इस पर कपिला ने आप बीती सारी कहानी रानी को सुनादी। रानी ने कहा — कपिले ! सेठ के सामने तू ठगा गई है। सेठ सचमुच बलवान्, रूपवान् और साक्षात् काम का अवतार है। किन्तु इसके साथ ही वह धर्म-निष्ठ भी है। उसने तुमसे पिण्ड छुड़ाने के लिए ही नामर्द के रूप में अपना परिचय दिया। और तुम उसके चकमे में आ गई। उसके जैसा अनुपम नर इस नगरी में नहीं है।

कपिला ने कहा — यदि ऐसी ही बात है तो आप ही सेठ को किसी तरह वश में कर अपनी विलक्षण सूझ का परिचय दें। आपने यदि सुदर्शन को वश में कर लिया तो मैं भी समझूंगी कि आप वास्तव में कला की पंडिता हैं। कपिला के प्रेरणा भरे वचनों ने अभिया को इस कार्य के लिए वचनबद्ध कर दिया और महारानी निरन्तर सुदर्शन को जालबद्ध करने को सोचने लगी।

संयोगवश कौमुदी-महोत्सव का समय आया। राज्य की ओर से घोषणा की गई कि महोत्सव के दिन कोई भी नागरिक नगर में नहीं रहे। सुदर्शन प्रतिमास पर्वतिथियों में पौषध किया करते थे अतः उन्होंने राज्य की अनुमति पाकर कार्तिक शु० चतुर्दशी और पूनम का पौषध व्रत लेलिया।

नगर के सब लोग महोत्सव में गए हुए थे। सेठानी मनोरमा भी पुत्रों के संग महोत्सव देखने को चली। नगर सब तरह से सूना था। महारानी अभिया ने अपना मनोरथ पूरा करने का एक मात्र यही उचित अवसर समझा। उसने पेट दर्द का बहाना बनाकर महाराज से महल जाने की अनुमति प्राप्त करली।

इधर सेठ सुदर्शन पौषधशाला में कायोत्सर्ग किए बैठे थे। महारानी ने अपनी विश्वस्त धाई के द्वारा सुदर्शन को महल में बुलवा लिया। महल के एकान्त स्थान में अभियान ने हरसंभव उपाय से सेठ को मोहित करने का प्रयत्न किया पर दरिया में डाली गई तूली के समान रानी के सारे प्रयत्न बेकार से हो गए। अभियान ने डराया, धमकाया और अनेक प्रलोभन देकर उसको वश में करना चाहा पर दृढ़धर्मी सुदर्शन अपने शील में हर तरह से दृढ़ बना रहा। आखिर रानी ने त्रियाचरित्र के द्वारा सुदर्शन को पकड़वा दिया।

राजा ने सुदर्शन से इस सम्बन्ध में बहुत कुछ पूछा मगर उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया। अपराधी समझ कर सुदर्शन को शूली की सजा दी। वह अपने धर्म में दृढ़ था तथा मरणान्तिक सजा की बात सुनकर भी उसके मन की शान्ति नहीं मिटी। वह पंच परमेष्ठी का ध्यान करके शूली पर चढ़ गया। कुछ ही समय में क्या देखते हैं कि शील के प्रभाव से शूली सिंहासन में बदल गयी। शीलव्रती सुदर्शन की जय से चारों दिशायें गूंज उठीं। राजा और नगर के समस्त प्रजाजन क्षमायाचना करते हुए सुदर्शन की महिमा गाने लगे – सत्य की सदा जय होती है।

• •

महासती सुन्दरी

कथांक : १८. गाथांक : १५.

सुन्दरी भगवान् ऋषभदेव की कन्या और भरतचक्रवर्ती की बहिन थी। उसका रूप-लावण्य वस्तुतः नाम के अनुरूप ही था। शिक्षा, कला और कौशल आदि की दृष्टि से भी सुन्दरी अनुपम थी। घर वैभव से भरा और परिवार अद्वितीय था। मगर वैराग्य बीज 'मन के भीतर' होने के कारण सुन्दरी को सासारिक विषयो और सुख साधनो से घोर घृणा थी। जैसे कमल जल मे रहकर भी जल से अलिप्त रहता है वैसे सुन्दरी-सुख-सामग्री से घिरी रहकर भी उन सब से अलिप्त थी।

सुन्दरी ने अपनी संयम साधना एवं दीक्षा के लिए भरत को वार-वार कहा मगर वे राजी नही हुए। भरत सुन्दरी से स्नेह करते थे और नहीं चाहते थे कि वह उनसे अलग होवे, इसलिए वे उसके अनुरोध को बरावर ठुकराते रहे।

संयोगवश भरतजी दिग्विजय मे गए और उसे सम्पन्न करने मे उन्हें ६० हजार वर्ष लगे। इस बीच सुन्दरी श्राविका बनकर आयविल करती और घोर तपस्या के द्वारा शरीर को क्षीणतम वनाती रही।

दिग्विजय के वाद जव भरतजी राजधानी लौटे तो नागरिक अभिनन्दन सत्कार के वाद अनेक अभिलाषाओं को सग लिए सुन्दरी के प्रकोष्ठ मे पहुँचे। किन्तु वहा पहुँच कर जब उन्होने सुन्दरी के कृश शरीर को देखा तो दग रह गए। क्योकि वह कुसुम-सा कमनीय कलेवर तपश्चर्या की आच मे झुलस कर, हड्डियो का ढाचा मात्र रह गया था। वह रूप

लावण्य जो भरत जैसे महान् शूर को अपनी ओर आकृष्ट किए था, न जाने इस बीच कहां गायब हो गया था। सुन्दरी की यह दशा देखकर भरतजी स्तब्ध रह गए। विजय का गर्व घर में खर्व हो गया।

प्रारम्भिक शिष्टाचार एवं कुशलक्षेम के बाद भरतजी ने सुन्दरी से कहा—देवी! मैं तुमको भलीभांति समझ नहीं सका। अगर मैं जानता कि तुम संयमाराधन के लिये इतनी आतुर हो तो मैं दीक्षा की आज्ञा कब न दे देता। इस पर सुन्दरी बोली कि आप जब भी अनुमति देंगे, तब मुझे संयम लेना है।

सौभाग्यवश भगवान् ऋषभदेव भरत की नगरी में पधारे। सुन्दरी और भरत भी दर्शनार्थ उनकी सेवा में पहुंचे। भगवान् ने उपस्थित लोगों को उपदेश दिया। उपदेश सुनकर सुन्दरी हाथ जोड़कर बोली कि प्रभो! अब मुझे दीक्षा देकर अनुगृहीत करें।

इस प्रकार अतुलित वैभव, सुख-साधन एवं रूप-लावण्य का मोह छोड़ कर सुन्दरी ने दीक्षा ग्रहण की। वह आबाल ब्रह्मचारिणी रही और अपने अनमोल उपदेश से जगत् का अमित उपकार किया एवं अन्त में आप स्वयं निरंजन; निराकार तथा निर्विकार पद को प्राप्त हुई और परम ज्योतिर्मय बन गई।

• •

सती सुनन्दा

अवन्ति देश में "तुम्ववन" नाम का एक श्री सम्पन्न नगर था। वहां धनपाल नाम का एक गृहस्थ रहता था जिसके पुत्र का नाम धनगिरि था। धनगिरि का मन संसार में नहीं लगता और वह साधु बनना चाहता था।

माता पिता को धनगिरि का विचार पसन्द नहीं था। वे उसे संसार में रंगा देखना चाहते थे। सुयोग से सुनन्दा नाम की एक रूप गुण सम्पन्न कन्या ने स्वयंवर के रूप में धनगिरि को वरण कर लिया। हारकर वह दीक्षा ग्रहण करने में तत्काल समर्थ नही हो सका।

धनगिरि और सुनन्दा का जीवन आनन्दपूर्वक बीतने लगा। सुनन्दा के सद्गुण डोर से बधा धनगिरि अनचाहे भी सांसारिक प्रवृत्तियों में उलझा रहा। समय पाकर सुनन्दा गर्भवती हुई तो धनगिरि उसने बोला – प्रिय ! अब तुम्हारे भविष्य का आधार ठीक हो गया है। फिर मुझे इच्छा के विपरीत यहां चिरकाल तक उलझाए रखने में क्या मजा है ?

धनगिरि के निश्छल वचन से सुनन्दा अत्यन्त प्रभावित हुई और हार कर उसने व्रत ग्रहण की आज्ञा दे दी। धनगिरि आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हो गया, जहां पहले से ही सुनन्दा का भाई दीक्षित होकर रहा था।

समय पर सुनन्दा को पुत्र रत्न का लाभ मिला। उसने जी खोलकर जन्मोत्सव मनाया किन्तु पूर्व संस्कार एवं जाति स्मरण ज्ञान के कारण शिशु ने रो-रो कर माता को परेशान कर दिया। सुनन्दा पुत्र को पाकर जितनी खुश नहीं थी उससे अधिक वह उसके रोने से दुःखी रहा करती।

एकबार धनगिरि अपने गुरु सिंहगिरि के साथ "तुम्बवन" में पधारे और गुरु की आज्ञा से गोचरी के लिए गांव में गए। जब वे सुनन्दा के घर पहुँचे तो उसने कहा – महाराज ! आप अपनी धरोहर साथ लेते जाओ। मुझसे अब इसकी रखवाली संभव नहीं है। धनगिरि शिशु को लेकर गुरु के पास चले आए। गुरु ने भी उसके पालन की समुचित व्यवस्था करादी।

कुछ दिनों के बाद वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर सुनन्दा पुनः बच्चे को लेने के लिए मुनि के पास पहुंची किन्तु उन्होंने देने से इन्कार कर दिया। बालक शय्यातरी के पास सुखपूर्वक रहता था। सुनन्दा राजदरबार में पहुँची और अपनी शिकायत करदी। राजा ने दोनों पक्ष वालों को बुलाए। बालक ने माता के खिलौने न लेकर संघ को ओर से रखे गये रजोहरण को ही पसंद किया। "बालक जिस ओर जाना चाहे वही माता" इस दृष्टि से बालक शय्यातरी को ही मान्य किया। सुनन्दा की अर्जी खारिज हो गई।

सुनन्दा के कोमल मन पर बालक के इस निस्पृह व्यवहार का बड़ा असर पड़ा। उसने सोचा यहां कौन किसका है ? जब मेरा भाई, पति और एक नन्हा मुन्ना शिशु तक संसार-प्रेम में उलझना पसंद नहीं करता तो फिर मुझे यहां रह कर क्या करना है ? इस प्रकार सोचते हुए उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण करली।

सुनन्दा का जीवन बचपन से ही शील परिपूर्ण था। धनगिरि के साथ उसका लग्न भी शील के कारण ही हो सका। उसने आर्य धनगिरि की विरक्ति से लेकर मरण पर्यन्त स्वप्न में भी शील का खण्डन नहीं किया। यह दीर्घकालीन शील साधना का ही फल है कि आर्यवज्र जैसे तेजस्वी की माता बन सकी। संयम लेकर भी ऐसे ही उच्च भावों से साधना की कि अल्प समय में आत्मकल्याण की आराधक बनी।

卐 卐

• शीलकुलकम् ▶ महासती चेलना

कथांक : २०.　　　　गाथांक : १५.

महासती चेलना महाराज चेटक की सुपुत्री थी। वह अत्यन्त रूपवती एवं गुणवती राजकन्या थी। उसके आचार-विचार एवं संस्कार सभी सराहनीय थे, एक उच्च वंश की सन्तति में जो-जो विशेषताएँ अपेक्षित होती हैं, चेलना उन सभी गुणों से परिपूर्ण थी। चेलना का परिवार आर्हत धर्म में रंगा था अतएव चेलना बचपन से ही जैन धर्म की उपासिका थी।

यौवन के उदय पर उसका विवाह मगधाधिपति महाराज श्रेणिक के साथ सम्पन्न हुआ। श्रेणिक कट्टर बौद्ध धर्मानुयायी थे। अतः चेलना को बहुत दिनों तक उनसे धार्मिक संघर्ष करना पड़ा। राजा श्रेणिक ने चेलना को बौद्धमत में रंगने का भरसक प्रयत्न किया। छल से बनावटी जैन मुनि की कदाचार लीला दिखला कर, उसके मन पर जैन श्रमणों के प्रति घोर घृणा की छाप अंकित करने की कोशिश की और भी ऐसे बहुतेरे प्रयास किए जिससे चेलना आर्हत-धर्म से पराङ्मुख बन जाय किन्तु उसके सारे प्रयत्न चेलना के अटल धैर्य के सामने विफल रहे। मेरु की तरह चेलना अपने धर्म में अडोल और अकम्पित रही।

महारानी चेलना के सदाचार और दृढ़ श्रद्धा को देखकर महाराज श्रेणिक का हृदय पसीज गया, और वे शुद्ध अहिंसाधर्मी जैन बन गए। जो श्रेणिक कभी शिकार में हरिणों एवं अन्यान्य पशुओं पर अकारण तीक्ष्ण बाण चलाया करते तथा उसका वध देखकर प्रहृष्ट मन होते थे, वे ही अब पूर्ण अहिंसोपासक बन गए। श्रेणिक के जीवन की दिशा

बदल गई और बदल गया पूरा संस्कार। चेलना की संगति ने पारस की तरह श्रेणिक के लौह मानस को कनकवत् बना दिया। अन्त में राजा श्रेणिक महाराज अनाथी के चरणों में नतमस्तक होकर सम्यक्त्वधारी बन गये। वर्षों जिनशासन की सेवा बजाई और अतिशय धर्म-प्रभावना के कारण तीर्थङ्कर गोत्र के अधिकारी बन गए।

आने वाली चौवीसी में महाराज श्रेणिक का जीव ही पद्मनाभ तीर्थङ्कर के रूप से जन्म लेंगे और भविजनों को धर्म-मार्ग बता कर मोक्ष के अधिकारी होंगे।

श्रेणिक के जीवन सुधार का सारा श्रेय महासती चेलना को ही है। अगर चेलना श्रेणिक के विचारों के सामने झुक जाती और अपनी धार्मिक श्रद्धा डिगा देती तो निश्चय आज जगत् में न तो चेलना का ही पता होता और न श्रेणिक का ही किन्तु दृढ़ धर्म-भक्ति के कारण सती चेलना स्वयं भी अमर हुई और जगत् की नारियों को अमरत्व का संदेश दे गई।

• •

मनोरमा

चम्पा नगरी के दृढधर्मी सेठ सुदर्शन को कौन नही जानता ? वे रूप, शील और गुण मे बेजोड थे । उस समय सर्वत्र उनकी चर्चा थी और सब लोग उनकी धर्मनिष्ठा के कायल थे। मनोरमा उनकी धर्मपरायणा पत्नी थी । वह न सिर्फ रूप लावण्य मे अद्वितीय थी बल्कि शील पालन मे भी उसकी कोई जोडी नही थी । "सोना मे सुगध" की कहावत को 'मनोरमा' अक्षरश चरितार्थ करने वाली रमणी-मणि थी । ऐसी मनोरमा पत्नी को पाकर सुदर्शन का जीवन धन्य - धन्य बना हुआ था । मनोरमा के पाच पुत्र थे जो पाण्डवो की तरह धर्म और व्यवहार मे सर्वथा निपुण बने हुए थे। इस तरह सुदर्शन का परिवार हर्ष और उत्कर्ष के रगस्थल के रूप मे चम्पा मे प्रख्यात बन गया था ।

दैवयोग से एक बार कामपुत्तली महारानी अभिया ने, सेठ सुदर्शन को, उसके रूप लावण्य एव गुण पर मुग्ध होकर अपने महल मे बुलाया और उससे वासनापूर्ति की याचना की । मगर धर्मप्राण सेठ ने महारानी के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया । फलत रानी ने सुदर्शन पर बलात्कार का आरोप लगाया और प्रपञ्चात्मक इस अभियोग मे उसे शूली की सजा मिली ।

जब नगरवासियो ने इस समाचार को सुना तो वे हक्का - बक्का हो गये । भला ! लोकप्रसिद्ध धर्मात्मा सेठ भी ऐसा दुष्कर्म कर सकता है ? किसी के मन मे यह बात नही जची किन्तु राजा के आदेश को रोकने की सामर्थ्य किसी मे नही थी । वे सब मनोरमा के पास दौड कर आए और बोले कि आपके पतिदेव को बडा ही कठोर दण्ड सुनाया गया है — सभवत:

अब उनसे मिलना हो या नहीं। इसलिए जल्द चलकर एक बार उनसे अन्तिम भेंट कर लीजिए।

मनोरमा को अपने पति पर पूर्ण भरोसा था। वह अच्छी तरह जानती थी कि "सूर्य कदाचित् दिशा बदल सकता है" समुद्र कभी अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर सकता है पर मेरे स्वामी स्वप्न में भी कभी सदाचार - विमुख नहीं हो सकते। पूर्व के किसी अशुभ कर्म के उदय से उन पर यह कलंक लग गया है मगर वे सर्वथा निष्कलंक और निष्पाप हैं। बादल अधिक काल तक सूर्य को ढंक कर नहीं रख सकता। वह अवसर पाते ही अपने आलोक से ससार को आलोकित कर देता है। मैं कलंक की दशा में उनसे भेंट कर उनके दु:खी मन को और बोझिल नहीं बनाऊंगी। जब उनका कलङ्क दूर होगा, मैं तभी उनका दर्शन करूंगी। ऐसा सोचकर मनोरमा शुद्ध हृदय से प्रभु के ध्यान में लीन हो गई। लोगों को उसके इस व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ।

मनोरमा अपने शील में निरत तथा उपस्थित बाधा के प्रति निश्शंक बनी रहीं। फलत: थोड़े ही समय में आकाशवाणी हुई, सुदर्शन का कलंक मिटा और उसके शील की जय जयकार हुई। राजा और प्रमुखजनों के साथ मनोरमा सुदर्शन की जय जयकार के बीच अपने घर लाई। नगर भर में आनन्द छा गया और सर्वत्र सुदर्शन और मनोरमा के शील की महिमा गायी गई।

• •

महासती अजना महेन्द्रपुरी के राजा महेन्द्र की पुत्री थी। उसकी माता का नाम मनोवेगा था। अजना जैसी ही रूपवती वैसी ही गुणवती भी थी। बचपन से ही उसे जैन धर्म पर अनुराग था।

जब वह बडी हुई तो एक दिन साज-शृङ्गार से भूषित होकर अपने पिता के पास पहुँची। महेन्द्र ने जब अजना के रूप-लावण्य एव तरुणाई को देखा तो उसका विवाह कर देने की चिन्ता हो गई। अजना के अनुरूप वर की चर्चा मे कोई रावण की बात चलाता और कोई मेघकुमार की। जिसमे मेघकुमार उपयुक्त होते हुए भी इसलिए योग्य नही जचा कि दैवज्ञो ने उसके लिए १८ वर्ष की अवस्था मे सयम और २६ वर्ष की आयु मे मृत्यु की बात कही थी। अन्त मे रतनपुरी के राजा प्रह्लादजी के पुत्र पवनजी का नाम अजना के वर-रूप मे आया। किन्तु पवनजी कन्या को देखे बिना विवाह करना नही चाहते थे।

जब यह खबर राजा महेन्द्र को लगी तो उन्होने कन्या निरीक्षण की व्यवस्था करवा दी। पवनजी अजना को देखने के लिए वहा पहुचे, जहा अजना अपनी प्रिय सखियो से घिरी हुई प्रेमालाप कर रही थी। पवन को देख किसी सखी ने कहा कि जोडी अच्छी रहेगी। इस पर दूसरी बोली कि पहली जोडी भी कोई खराब नही थी किन्तु उसके भाग्य मे अल्प वयस मे ही सयम और मृत्यु लिखी थी। यह सुनकर अजना बोली कि भाग्य-योग से ही ऐसे सुन्दर सयोग मिलते हैं।

पवनकुमार जो एक टक अंजना का रूप पान कर रहा था, उसकी इस बात से बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह मन ही मन सोचने लगा कि यह तो पर-पुरुष की अभिलाषिणी है, इससे विवाह करना व्यर्थ है। किन्तु दोस्तों के समझाने से उसने विवाह तो कर लिया मगर अंजना से बिल्कुल विमुख और उदास रहने की मन ही मन प्रतिज्ञा करली।

माता-पिता से भरपूर उपहार प्राप्त कर अंजना जब ससुराल आयी तो वहां के वैभवादि देखकर प्रसन्न हो गयी, मगर तब उसे अपार दुःख हुआ जब पता चला कि पवनकुमार हमसे नाराज हैं। अंजना पवनकुमार को मनाने की अनेकों चेष्टा करती रही, किन्तु सफलता नहीं मिली। अंजना घर में उदासी की दशा में भी अपने धर्म-ध्यान में संलग्न रहती और अपने इष्टदेव की साधना करती रहती। उसके साथ केवल प्रिय दासी वसंतमाला थी।

एक बार पवनकुमार महाराज दशकंधर की आज्ञा से युद्ध में जाने को उद्यत हुए। मन्त्री ने उन्हें समझाया कि महाराज! युद्ध में जाने के पहले महारानी अंजना से मिल लें तो अच्छा रहेगा। इस पर पवन ने कहा कि अंजना शीलवती नारी नहीं है, उसके मन में पर-पुरुष का मोह है। इस पर मंत्री बोला कि राजन्! वह दिन-रात भगवान् जिनेन्द्र की आराधना करती है फिर भला! ऐसी सती भी कहीं कुलटा होगी? यह आपका भ्रम है, आप चलते-चलते एक बार अवश्य उस देवी को दर्शन देते जांय।

कुछ तो मन्त्री के समझाने और कुछ चकवापक्षी के शकुन से वे अंजना के पास गए। अकस्मात् प्राणवल्लभ को अपने पास आया देखकर अंजना को अपार प्रसन्नता हुई। अंजना के हर्ष का पार नहीं रहा। पवनजी भी परम प्रसन्न थे, अतः दोनों का प्रेमपूर्ण संयोग हुआ। लौटते समय वे चिन्तामणि अंजना को देते गए और बोले कि जब कोई आपदा आए या मेरी चिन्ता बढ़े तो इस मणि पर ध्यान देते रहना। तथास्तु, कहकर अंजना ने पवन को भाव-भीनी विदाई दी और आप दूने उत्साह के साथ पुनः धर्माराधन करने लगी।

अंजना को पवन के समागम से गर्भ रह चला और वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जब यह समाचार पवन की मां केतुमती ने सुना तो वह अंजना पर बहुत बिगड़ी और उसे कुलटा और पुंश्चली कहने लग गयी। इतना ही नही एक दिन उसने अंजना का मुख काला कर उसे अपने राज्य से बाहर निकाल देने का आदेश दे डाला। अजना ने बहुत कुछ समझाने तथा सच्चाई बताने का प्रयास किया किन्तु इस कठोर आदेश में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हुआ। हार कर अन्तर्गर्भा अंजना दारुण दुःख में पड़ी अपने मायके की ओर चली।

कहावत है कि दुर्दिन कभी अकेला नहीं आता, अतएव जो पितृगृह कन्या के लिए सब से बड़ा आश्रय का स्थान होता है और जहाँ बचपन से लेकर जवानी के दिन बड़े लाड़-प्यार मे कटते हैं, वे भी खराब ग्रह के उपस्थित होने पर विपरीत बन जाते हैं। अंजना जहां बचपन में सब की आंखों में प्रिय लगती थी, आज इस रूप में वहां भी कोई उसे आश्रय देने को तैयार नही था। माता कुछ पसीजी भी तो पिता महेन्द्र यह कहकर उसे रखने को तैयार नही हुए कि ऐसी-ऐसी कुलटाओं के रखने से प्रतिष्ठा में हानि होती हैं। यहां तक कि अड़ौसी-पड़ौसी भी कोई अंजना को शरण देने के लिए तैयार नही हुए। होते भी कैसे ? क्योंकि जो माता, पिता एवं भाई कभी उसे प्राणों से बढ़कर प्रिय मानते थे, जब वे ही इस घड़ी में उलट गए तो फिर औरों की बात ही क्या ? आखिर अंजना इस दु:स्थिति में एक निर्जन वन में छोड दी गई।

अशरणों का शरण केवल भगवान् ही होता है यह समझ कर अंजना ने भी जैसे-तैसे जंगल की भयावनी भूमि में अपना गर्भकाल पूर्ण कर परम पराक्रमी हनुमत्कुमार को जन्म दिया। वह धैर्यपूर्वक सारे कष्टों को भविष्य की आशा मे सहन कर रही थी, क्योंकि उसने यहां एक अदृश्य आकाशवाणी सुनी थी कि जल्द तुम्हारा दुःख दूर होगा और पवनदेव तुमको मानपूर्वक ले जाएगा।

भाग्यवश एक दिन गगन-मार्ग से जाते हुए विद्याधर सूरसेन ने, जो अंजना के मामा लगते थे, निर्जन वन में एकाकिनी नवप्रसूता स्त्री को एक

सद्य:जात शिशु के संग देखा। दयाभाव से प्रेरित हो वह उन्हें अपने यहाँ ले गया और बड़े प्यार से हनुमत्कुमार का लालन-पालन किया।

उधर पवनजी जब युद्ध से लौटे और महल में सती अंजना को नहीं देखा तो बहुत दु:खी हुए। सही स्थिति समझ कर उनके माता-पिता को भी अपने दारुण आदेश पर बड़ा दु:ख हुआ। चारों ओर अंजना की खोज हुई और आखिर पता चला कि वह हनुमत्कुमार के साथ मामा शूरसेन के घर में है।

पवनजी सम्मानपूर्वक अंजना सती को अपने घर ले आए और इस घटित घटना के लिए बहुत दु:खी एवं लज्जित हुए। माता पिता एवं सास ससुर सब को दु:ख हुआ और सभी अंजना के सामने शर्मिन्दे हुए। चिर-काल तक वीर बालक हनुमत्कुमार का लालन-पालन कर उसको शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न किया।

अन्त में अंजना आत्मसाधना के मार्ग को अपना उभयलोक सुधार कर कल्याण की भागिनी बनी।

माता अंजना के सदाचारपूर्ण जीवन का ही प्रभाव है कि हनुमत्-कुमार जैसे परम पराक्रमी पुत्र रावण के अतुल शौर्य को भी लज्जित कर संसार में विजयशाली बन सके।

धन्य है सती अंजना और धन्य है उनका तप, त्याग और धैर्य।

卐 卐

सती मृगावती

कथांक : २३. गाथांक : १५.

सती मृगावती धर्मप्रेमी महाराज चेडा की प्रिय पुत्री थी। उसका लालन पालन राजसी और धार्मिक संस्कारों के संग हुआ था। अतः उसके जीवन मे करुणा और धर्मभावना कूट-कूट कर भरी हुई थी।

बचपन के दिन चले गए और मृगावती धीरे २ जवानी के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। उसके अंग २ कदम्ब कुसुम की तरह हर्षोत्फुल्ल नजर आने लगे। पुत्री की तरुणाई ने, पिता के हृदय मे हलचल पैदा करदी और वे उपयुक्त वर की खोज के लिए चचन्न हो उठे।

चेडा भगवान महावीर के परमभक्त थे - अतः मृगावती के लिए ऐसा वर चाहते थे, जो शिक्षा, सस्कार, आचार-विचार, कुलशील एवं धार्मिकता में कन्या के अनुकूल हो।

भाग्यवश कौशाम्बी का राजकुमार शतानीक उसे योग्य जंचा और एक शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम के साथ इन दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। मृगावती शतानीक के साथ वधू बन कर अपनी ससुराल चली आयी।

राजा शतानीक मृगावती को जी - जान से चाहता था। उसने मृगावती के निवास के लिए एक नया रंगमहल तैयार करवाया तथा उसे रंगबिरंगे चित्रों से सुसज्जित कर दिया। महल को चित्रित करने वाले चित्रकारों ने यक्ष - सिद्धि बल से मृगावती का भी एक चित्र बनाया जिसकी जांघ पर तिल का चिह्न था।

संयोग से एक दिन राजा उन चित्रों को देखने आया और राणी के चित्र को देखकर आग बबूला हो गया। उसे रानी के चरित्र पर तो सन्देह हुआ ही पर चित्रकार पर इतना अधिक क्रोध हुआ कि उसे प्राण दंड का आदेश दे दिया। पीछे मंत्री के समझाने तथा कलाकार के द्वारा सच्ची बात कहने पर राजा ने प्राणदंड की आज्ञा बदल कर उसके हाथ के अंगूठे कटा डाले। कलाकार बच तो गया मगर घोर अपमान के संग अंगूठे से हाथ धोकर।

चित्रकार शतानीक से इस अपमान का बदला लेने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ बन गया उसने मृगावती का एक सुन्दर चित्र बनाया और अवन्तिपति चण्डप्रद्योतन को जाकर दिखाया। चण्डप्रद्योतन देखते ही उस पर आसक्त हो गया, किन्तु चित्रकार ने कहा कि महाराज! यह अनुपम सुन्दरी आसानी से प्राप्त नही होगी। इसके लिए खून और पसीनें एक करने पड़ेंगे तथा तलवारों से तलवारें लड़ानी पड़ेगी। कारण उसका पति शतानीक कुशल योद्धा है और वह अपनी प्रियतमा को यों आसानी से दूर नहीं जानें देगा।

यह सुनकर राजा हँसा और बोला — चित्रकार! तुम्हारा काम तूली पकड़ना है और हमारा तलवार। तुम तूलिका में रंग भरते हो, चीज कैसे हासिल की जाती है? यह मेरा काम है। तुम अपना इनाम लो और इसका निर्णय मुझ पर छोड़ दो। इस तरह शतानीक के लिए वैर की आग भड़का कर चित्रकार प्रसन्न हो वहां से चल दिया।

इधर चण्डप्रद्योतन ने मृगावती की मांग के लिए कौशाम्बी दूत भेजा। दूत की बात सुनते ही शतानीक क्रोध से जल उठा और बोला कि जाओ अपने स्वामी से कहो कि जब तक शतानीक के शरीर में रक्त का एक बूंद भी बाकी है तब तक मृगावती की छाया पकड़ने की चेष्टा करना भी मौत से खेलना है। मृगावती के पास आने के लिए सर पर कफन रखना जरूरी होगा।

दूत ने लौटकर चण्डप्रद्योतन को ऐसा नहीं करने के लिए बहुत कुछ समझाया किन्तु काम ज्वर से वह इतना संतप्त था कि उसकी एक भी बात

उसे पसंद नही आयी और उसने एक बडी सेना लेकर कौशाम्वी पर चढाई कर दी। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ और इस लडाई में शतनीक को जान से हाथ धोना पड़ा। कौशाम्वी बुरी तरह से बर्बाद करदी गई।

शतानीक के एक चतुर मंत्री ने चण्डप्रद्योतन को समझाया कि महाराज! मृगावती अभी पतिवियोग से दुःखी है। उस पर बलप्रयोग करने में अब कुछ महत्व नही। विपदा की घडी में सहानुभूति दिखा कर ही उसको अपना बनाने मे सफलता मिल सकती है। राजा को यह वात जची और उसने सहानुभूति का एक पत्र मृगावती को भेज कर अपनी सेना को अवन्ती लौटा दिया।

मत्री ने रानी की ओर से भी आभार प्रदर्शन का एक पत्र राजा को लिखा तथा भविष्य मे ऐसे सहायक की प्रीति को स्वीकार किया। इसके लिए एक वर्ष की अवधि मागी गई। पत्र पाकर चण्डप्रद्योतन खुशी मे फूला हुआ अवन्ती लौट गया।

इधर राजमहल मे मृगावती अपने पुत्र उदायन की वाल्यावस्था, पति-वियोग और चण्डप्रद्योतन को अमानुषिक क्रूरता को याद कर मन ही मन रो रही थी और उदायन शूरता की वात वता कर मा के दुःखी हृदय को मजबूत वना रहा था। इसी बीच मंत्री वहां आए और पत्राचार की सारी वातें रानी को वता दी और बोले कि भाग्य से हम मत्र को तैयारी के लिए एक वर्ष का समय और मिल गया है। इस अवधि मे अपनी तैयारी कर लेनी चाहिये। रानी मत्री के विचारो से सहमत होगई और वालक उदायन भी वहादुरी मे उछल पडा।

वर्ष के बीतते ही चण्डप्रद्योतन ने उपहार के संग रानी को एक प्रेमपत्र भेजा और जल्दी मिलने को इच्छा प्रकट की। दूत को जवाव दिया गया कि युद्ध मे जीते बिना जीतेजी मृगावती को पाना महा मुश्किल है।

सन्देश सुनते ही चण्डप्रद्योतन क्रोध से जल उठा और एक वडी सेना लेकर पुनः कौशाम्बी पर चढ आया। मगर इस बार कौशाम्वी सूनी थी और

सबके सब किले के भीतर चले गए थे। राजा ने किले का दरवाजा तोड़ना चाहा किन्तु सफलता नहीं मिली। आखिर घेराबन्दी कर वह वहीं जम गया।

मृगावती ने इन समस्त आपदाओं का कारण अपने रूप को समझा और उसे बिगाड़ने के लिए वह अनवरत तप करने लगीं। संयोग से भगवान महावीर कौशाम्बी पधार गए उनके समवसरण में चण्डप्रद्योतन, मृगावती एवं उदायन भी गए। भगवान् के उपदेश से मृगावती बहुत प्रभावित हुई और दीक्ष ग्रहण के लिए तत्पर हो गई।

चण्डप्रद्योतन रानी के दुबले और तप:तप्त शरीर को देखकर कामभाव भूल गया और दयाद्रवित होकर क्षमा मांगने लगा। उसने विनम्र शब्दों में कहा कि देवि ! शतानीक को तो मैं जीवित नहीं कर सकता पर मेरे द्वारा उजाड़ी कौशाम्बी को फिर एक बार फलाफूला देखकर फिर चाहे सो करना। रानी मान गई। चण्डप्रद्योतन ने रानी को माता माना तथा उदायन को भाई। दोनों के प्रयत्न से कौशाम्बी फिर चहचहा उठी।

कुछ दिनों के बाद राज्य का भार उदायन के ऊपर देकर रानी मृगावती ने दीक्षा ली और महासती चन्दनबाला के अधीन रहने लगी। विनयपूर्वक संयम का साधन करते हुए उसने केवलज्ञान पाकर अपना कल्याण कर लिया। निस्सन्देह मृगावती का शील रक्षण के लिए जीवन भारतीय ललनाओं लिए अनुकरणीय तथा अभिनन्दनीय है।

अच्चंकारिय भट्टा

क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर में जितशत्रु नाम का एक राजा और धारिणी नाम की रानी थी। सुबुद्धि नाम का उसका मन्त्री था। उसी नगर में धन नाम का एक सेठ था और उसके भट्टा नाम की पत्नी थी। उसकी एक बेटी थी जिसका भी नाम भट्टा ही था। वह अपने मां-बाप के बहुत प्रयत्न के बाद पैदा हुई थी, अतः उसके माता-पिता ने अपने समस्त परिजनों को कह दिया था कि कोई इसका "त्वंकार नही करे" याने तिरस्कार नही करे। तब से लोगो ने इसका नाम अच्चंकारिय रख दिया।

वह अत्यन्त रूपवती थी। उसके लिये बहुत से वणिक् कुल में वर खोजे गये मगर धन सेठ का कहना था कि जो इसको तिरस्कृत नही करेगा, उसी को यह दी जायेगी। उसके वरण की यही दृढ़ परिस्थिति थी।

किसी समय मन्त्री ने उसको वरण किया और धन सेठ ने उनसे भी यही कहा कि यदि तुम इसको कभी थोड़ा भी तिरस्कृत नही करोगे तो तुम को दूंगा। मन्त्री ने सेठ की बात स्वीकार करली। सेठ ने अपनी प्रिय कन्या को मन्त्री को पत्नी के रूप मे दे दिया। वह भी उसको आदर से रखता तथा उसकी बात को मान्य करता।

मन्त्री राज्यकार्य से प्रतिदिन पहर रात बीतने पर अपने घर लौटता था। इस पर भट्टा नाराज होती कि तुम सवेरे ही क्यो नही घर आ जाते हो। भट्टा की आपत्ति के बाद से वह नित्य सवेरे ही घर आने लगा।

मन्त्री के नित्य जल्दी घर जाने से राजा को चिन्ता हुई कि क्यों यह रोज सवेरे घर चला जाता है। राजा के द्वारा पूछे जाने पर दूसरों ने बताया कि राजन्! यह अपनी पत्नी की आज्ञा भंग नहीं करता है। इस पर एक दिन राजा ने मन्त्री से कहा कि आज बहुत आवश्यक काम है, अतः आज तुम जल्दी घर नहीं जाना। अतएव उस दिन वह सदा की भांति घर जाने को उत्सुक होते हुए भी, राजा के पास ही ठहर गया।

उधर उसकी पत्नी नाराज होकर दरवाजा बन्द कर सो गई। देर से मन्त्री घर आया और दरवाजा खोलने के लिए पत्नी को बहुत पुकारा किन्तु उसने दरवाजा नहीं खोला। बाहर खड़ा रहकर मन्त्री बड़ी देर तक दरवाजा खोलने के लिये उससे आग्रह करता रहा किन्तु जब उसने द्वार नहीं खोला तो हारकर मन्त्री ने उससे कहा कि आज से तुम इस घर की स्वामिनी नहीं रहोगी।

इसको भट्टा ने अपना अपमान माना और तुरंत द्वार खोलकर वह अपने पिता के घर को चल पड़ी। चलते समय उसने अपने आभूषण भी पहन रक्खे थे, अतः धन के लोभ से चोर ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और सारे आभूषण उतार कर उसको अपने नेता के हवाले कर दिया।

चोर सेनापति ने उसको अपनी पत्नी बनने को कहा किन्तु बलपूर्वक उसका शील हरण नहीं किया। इधर भट्टा भी उसको नहीं चाहती थी। इससे ऊब कर सेनापति ने भट्टा को जलूक वैद्य के हाथ में बेच दिया। उसने भी इसको भार्या बनने को कहा मगर भट्टा ने उसे भी पसन्द नहीं किया। हारकर वह क्रोध से उससे बोला कि पानी से जोंक पकड़ कर रोज लाओ। भट्टा शरीर पर मक्खन लगा कर जल में पैठती और जोंक पकड़ लाती थी। इस तरह नित्य प्रतिकूल काम करते हुए भी उसने शील भंग करना नहीं चाहा।

नित्य जोंकदंशनजन्य रक्तस्राव से भट्टा विरूप बन गई। संयोगवश एक दिन वहां कहीं से उसका भाई आ गया और अपनी बहिन के सदृश जानकर उसने इससे पूछा तो भट्टा ने सारी बातें बता दीं। भाई ने वैद्य

को द्रव्य देकर अपनी बहिन को छुड़ा लिया और वमन विरेचनादि की दवा देकर पुनः भट्टा को नवकान्ति सम्पन्न बना दिया। पीछे मन्त्री भी उसे अपने घर ले गया और उसको पूर्ववत् गृहस्वामिनी बना कर उसकी बात को मान्यता देने लगा।

भट्टा ने भी उस दिन से क्रोध व मान का दोष देख कर उसे त्यागने का निश्चय कर लिया और सानन्द जीवन व्यतीत करने लगी।

इस तरह शील के माहात्म्य से भट्टा अमर ख्याति प्राप्त कर गई।

● ●

महाराज भरत जब छः खण्डों को साध कर विनीता लौटे तो अपने भाइयों को अपने अधीन करने की बात ध्यान में आयी। चक्ररत्न आयुध-शाला में प्रवेश नहीं कर रहा था, इस वास्ते भरत ने समझा कि बाहुबली आदि भाइयों ने जो अभी तक मेरी आधीनता स्वीकार नहीं की है, अतएव ऐसा हो रहा है। भरत ने सबके पास अपने आशय के संग दूत भेजे। एक दूत बाहुबली के पास भी पहुँचा।

बाहुबली ने भरत के दूत को देखकर कहा – अरे! क्या तेरे स्वामी को अब तृप्ति नहीं हो रही है जो लोभवश भाइयों के राज्यों को भी छीनना चाहता है। और तो क्या मेरे राज्य की ओर भी नजर डाल रहा है। जाओ अपने स्वामी को कह दो कि मैं युद्ध के लिए तैयार होकर आ रहा हूं। राज्य मांगने से नहीं मिलता। वसुधा वीरों के द्वारा ही भोगी जाती है। दूत ने सारी बातें भरत की सेवा में निवेदन करदी।

भरत और बाहुबली दोनों अपनी २ सेना के साथ मोर्चे पर आ डटे और बारह वर्षों तक लगातार सैन्यसंघर्ष होता रहा। कोई किसी से पीछे हटना नहीं चाहता था। अगणित जन मृत्युशय्या पर सोते जारहे थे। रक्त से वसुधा लाल हो रही थी फिर भी लडाई बन्द होने के कोई लक्षण नजर नहीं आ रहे थे।

बाहुबली ने यह स्थिति देखकर कहा – भरत! इन बेचारों निरीहों को नष्ट करने से क्या लाभ? आओ हम तुम आपस में ही शक्ति परीक्षण कर जय पराजय का निश्चय करलें। भरत को भी यह बात पसन्द आ

गई। सर्वप्रथम दृष्टियुद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें भरत हार गए। इसी प्रकार वाक्‌युद्ध, मुष्टियुद्ध, दंडादंडि और केशाकेशि इसी प्रकार के युद्ध हुए किन्तु भरत सब में पराजित होते गए। हार कर भरत सोचने लग गए कि क्या मैं चक्रवर्ती नहीं हूं ? जो मेरी इस तरह हार पर हार होती जा रही है।

देवों ने भरत की चिन्ता पर सहानुभूति प्रगट किया और चक्ररत्न लाकर उनके सामने उपस्थित कर दिया-जिससे उनका-हारा हुआ दिल पुनः युद्धोन्मुख बन जाय। चक्ररत्न को पाकर भरत बाहुबली पर प्रहार करने को दौड़े तो बाहुबली ने सोचा – चाहू तो एक ही मुष्टि प्रहार से चक्र सहित भरत को चूर्ण-चूर्ण कर दूं, किन्तु इन तुच्छ सांसारिक भोगों के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। मेरे अन्य भाइयों ने ठीक ही किया जो परिग्रह का बन्धन काट डाला। इस तरह सोचते हुए उन्होंने भरत से कहा—भरत ! अधर्म युद्ध करने वाले तुम्हारे पौरुष को धिक्कार है। लो अपना यह राज्य संभालो। अब मुझे भोग नहीं चाहिए - इसका कड़वा फल मैंने काफी चख लिया। ऐसा कहकर तत्क्षण बाहुबली ने सिर मुंडन कर मुनिव्रत ग्रहण कर एकान्त वनप्रदेश में ध्यान धारण कर लिया।

ध्यान धारण के बारह महीने होने को आए। बाहुबली के बदन पर बेलें छा गई और चारों ओर दीमक ने मिट्टी जमादी पर मुनि वैसे ही ध्यानावस्थ खड़े रहे। बोध का समय समझ कर प्रभु ने ब्राह्मी सुन्दरी दोनों सतियों को बाहुबली के पास भेजा। सतियों ने आकर नमस्कार के पश्चात् कहा बन्धुवर ! हाथी से नीचे उतरो, इस तरह दो तीन बार बोलकर साध्वियां चली गयीं।

बाहुबली सोचने लगे–मेरे पास हाथी कहां है ? फिर ये सतियां झूठ भी नहीं बोल सकती। खूब विचार कर सोचा तो भान हुआ कि मैं मान रूप हाथी पर आरूढ हूं। विवेकी को मान नहीं करना चाहिए। शुद्धभावना पूर्वक चिन्तन करते हुए, अभिमान रहित होकर भाइयों को वन्दन करने के लिए चरण ज्योंही आगे बढ़ाये कि सहसा केवलज्ञान हो गया।

बाहुबली का यह बाह्यान्तर तप साधना का ही अनुपम फल है।

• •

गौतम गणधर

वीर शासन के ज्येष्ठ श्रेष्ठ महामुनि गौतम को कौन नहीं जानता ? भ० महावीर के १४००० हजार श्रमणों में आप प्रमुख एवं प्रथम गणधर थे ।

मगध के माने हुए विद्वान् भगवान् महावीर के केवलज्ञान की महिमा सुनकर जब उनकी परीक्षा के लिए उपस्थित हुए, तब इन्द्रभूति, जिनको गौतम कहते हैं, ५०० छात्रों के साथ सबसे आगे थे। उनके मन में विचार था कि समस्त देव मानवों के बीच आज प्रश्नजाल से उनको ऐसा हतप्रभ बनाऊंगा कि क्षणमात्र में उनके सर्वज्ञवाद का गढ़ चूर-चूर हो जाएगा, परन्तु जब समवसरण के द्वार पर आए तो प्रभु ने इन्द्रभूति गौतम नाम से पुकारा । फिर तो आपकी बुद्धि संशय में पड़ गई कि इन्होंने हमारा नाम कैसे जाना । आखिर साहस बटोर कर आगे बढ़े कि अगर मेरे मानसिक संशय का निवारण करेंगे तो समझूंगा कि केवलज्ञान विशिष्ट हैं ।

इन्द्रभूति ने प्रश्नों की झड़ी लगादी और संशयों के जाल को इस तरह फैलाया कि भगवान की जगह कोई दूसरा होता तो उसके व्यूह से निकल नहीं सकता था किन्तु प्रभु आखिर प्रभु थे और उन्होंने गौतम के मन का संशय दूर किया जैसे हवा बादल दल को दूर करती है । फलतः संशय की निवृत्ति होने पर इन्द्रभूति गौतम ५०० छात्रों के साथ भगवान् के चरणों में दीक्षित हो गए ।

प्रभु की प्रथम देशना सुनकर आपने त्रिपदी से चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया । ज्ञान के साथ आपका तप साधन भी अपूर्व था । निरन्तर

वेले २ की तपस्या करना और पारणा के समय मे निरहकार भाव से स्वय भिक्षा के हेतु प्रयाण करना । ज्ञान पूर्वक तपसाधन मे आपको अनेक प्रकार की लब्धिया प्राप्त हो गई । शास्त्र मे कहा है — "उग्गतवे, दित्ततवे, महातवे, उराले घोरे घोर गुणे घोरतवस्सी घोरबभचेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्त विउलतेउलेस्से ।" भग० ।

चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारी होकर भी आप ऐसे–तपस्वी थे कि आप मे तप के साथ ध्यान और ज्ञान का भी सुन्दर सुमेल था । भ० महावीर के निर्वाण के पश्चात् आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने घनघातिकर्म का क्षयकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया और १२ वर्ष की केवल पर्याय का पालन कर सिद्ध बुद्ध एव मुक्त हो गए ।

卐 卐

सनत्कुमार

कथांक : २७.   गाथांक : ५.

प्राचीन समय में कुरु देश के हस्तिनापुर में अश्वसेन नाम के राजा थे। उनकी प्रिय पत्नी महारानी ने चौदह सपनों से सूचित एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया, जिसका नाम सनत्कुमार रक्खा गया। वाल्यकाल पूरा होने पर सनत्कुमार को महेन्द्रसिंह के साथ सम्पूर्ण कलाओं का अध्ययन कराया गया।

सनत्कुमार वाल्यकाल से ही क्रीड़ाप्रिय और महत्वाकांक्षी थे, अतः एक बार अश्वक्रीड़ा के प्रसंग में वनविहार को निकल पड़े। अन्य कतिपय राजकुमार भी आपके साथ थे किन्तु तेजगति के कारण आपका अश्व, सबसे आगे बढ़कर वन में अदृश्य हो गया। सनत्कुमार के बहुत प्रयत्न करने पर भी अश्व नहीं रुका और वे वन में अकेले पड़ गए।

जब राजकुमार के भटकने की खबर राजा को लगी तो उन्होंने पता लगाने के लिए महेन्द्रसिंह को भेजा। कुमार की खोज में महेन्द्रसिंह ने कुछ उठा नहीं रक्खा। वह मार्ग उन्मार्ग का ख्याल किए विना वर्षों वन में भटकता रहा। खोजते २ एक दिन वह एक सरोवर के पास पहुँचा। वहां उसे मधुर गीत की आवाज सुनाई दी। उत्कण्ठावश महेन्द्रसिंह ने आगे बढ़ कर देखा तो विविध रमणियों के बीच उसे सनत्कुमार बैठा दिखाई दिया।

महेन्द्रसिंह आश्चर्यमग्न होकर सोच ही रहे थे कि उन्हें बन्दीजनों के द्वारा "महाराज सनत्कुमार की जय हो" की आवाज सुनाई पड़ी। दृढ़ निश्चय से प्रसन्न होकर महेन्द्रसिंह आगे बढ़ा। सनत्कुमार ने भी उठकर उनका

सत्कार किया और पूछा कि मित्र ! अकेले इस भयानक जंगल में कैसे चले आए ? और आपको मेरा पता कैसे लगा ? तथा मेरे वियोग में मेरे माता-पिता क्या कर रहे हैं ?

महेन्द्रसिंह ने सारी बातें कह सुनायीं तथा राजकुमार से भी पूछा कि इतने दिनों तक तुम कहां, कैसे ठहरे और इस प्रकार की ऋद्धि कैसे प्राप्त की ? सनत्कुमार ने इन प्रश्नों का उत्तर अपने मुख से न देकर खेचर पुत्र के द्वारा दिलवाया कि अटवी में घूमते कुमार को विविध यातनाएं सहन करनी पड़ीं। पुण्यबल से उन्हें वनवासी यक्ष और विद्याधर का स्नेह प्राप्त हुआ। उसी के प्रभाव से ये आज दिव्य ऋद्धि सम्पदा भोग रहे हैं।

समय पाकर महेन्द्रसिंह ने कुमार से हस्तिनापुर चल कर माता-पिता को आश्वस्त करने की प्रार्थना की। कुमार ने भी ससमारोह हस्तिनापुर की ओर प्रयाण किया।

माता-पिता ने अत्यन्त हर्ष से पुत्र को गले लगाया और उसकी बढ़ती हुई पुण्यकला को देखकर प्रसन्नता प्रकट की। कुछ दिनों के बाद महाराज अश्वसेन ने सनत्कुमार को राज्याभिषेक कर, स्वयं स्थविरों के पास प्रव्रज्या ग्रहण करली।

सनत्कुमार ने पूर्वकृत पुण्योदय से थोड़े ही समय में चौदह रत्न और नौ निधियों की प्राप्ति करली, साथ ही छः खण्ड की साधना के पश्चात् चक्रवर्ती का पद भी प्राप्त हो गया। शक्रेन्द्र ने अवधि ज्ञान से पूर्वजन्म में अपने पद पर जानकर, वैश्रमण देव के द्वारा उनका राज्याभिषेक करवाया।

एक दिन देवपति इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे कि सहसा ईशान कल्पवासी कोई देव वहां आ पहुंचा। आने वाले की प्रभा को देख कर सौधर्म कल्पवासी देव चकित और निष्प्रभ हो गए और उन्होंने आगत देव के चले जाने पर सौधर्मेन्द्र से पूछा — स्वामिन् ! इस देव की दीप्तिमान प्रभा का कारण क्या है ? यह सुनकर इन्द्र बोले — इसने पूर्वभव में आयम्बिल वर्द्धमान तप खण्ड की साधना की है। उसी के प्रभाव से इसको इतनी प्रभा प्राप्त हुई है।

देवों ने पुनः इन्द्र से पूछा कि क्या कोई दूसरा भी इस प्रकार की दीप्ति वाला है ? इन्द्र ने कहा—हस्तिनापुर के कुरुवंश में चक्रवर्ती सनत्कुमार का ऐसा रूप है कि कोई भी देव उसकी तुलना में नहीं आ सकता।

देवसभा के दो देव विजय वैजयंत इन्द्र के इस कथन से सहमत नहीं हुए और उन्होंने इसकी परीक्षा करनी चाही। दोनों ने ब्राह्मण का रूप बनाया और घूमते हुए राजमहल के आगे द्वारपाल से राजदर्शन की इच्छा प्रकट की। आदेश मिलने पर वे सनत्कुमार के समीप गए। उस समय उनके शरीर पर मालिश हो रही थी। सनत्कुमार के सुन्दर रूप को देख कर दोनों देव चकित हो गए और उन्होंने इन्द्र के कथन की सराहना की। उन दोनों के चलते समय महाराज ने पूछा – कैसे आए हैं ? तो उन्होंने कहा महाराज ! आपके रूप की प्रशंसा सुनकर उसे देखने को आए। इस पर महाराज बोले – अभी क्या देखते हो जब शृंगार कर राज-सभा में बैठूं तब आना। देवों ने वैसा ही किया। महाराज के राज-सभा में विराजमान होते ही ब्राह्मण रूपधारी देव वहां आए और क्षण-भर देखकर अपनी गर्दन हिलाने लगे। महाराज ने इसका कारण पूछा तो वे बोले—महाराज ! घड़ी भर पहले का आपका वह सौन्दर्य अब नहीं रहा। बदन में कीड़े उत्पन्न हो गए हैं। महाराज सनत्कुमार शरीर की इस परिवर्तनशीलता विरूपता और नश्वरता को देखकर विरक्त हो गए और विपुल राज्यवैभव को त्याग कर स्थविरों के पास दीक्षित हो गए। स्त्रीरत्न और सभी नरेन्द्र एवं अधिकारी वर्ग छः महीने तक पीछे चलते रहे पर महाराज ने नजर उठाकर भी उनकी ओर नहीं देखा।

सर्वप्रथम दो दिन की तपस्या के पारणक में आपको बकरी की छाछ प्राप्त हुई और उसी का पारणा किया। दूसरे दिन फिर बेले का तप स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अनवरत तप और नीरस आहार से उनके शरीर में काश श्वास एवं ज्वरादि रोग उत्पन्न हो गए मगर ७०० वर्षों तक रोग पीड़ा सहन करते हुए भी आप उग्र तप करते ही रहे। फलतः आपको कई लब्धियां प्राप्त हो गईं, फिर भी आपने रोग का कोई प्रतीकार नहीं किया।

कुछ समय के बाद अनेक देव आपकी सेवा में आए और बोले—हम रोग मिटाते हैं। सनत्कुमार मौन भाव से खड़े रहे। बारम्बार देवों के द्वारा रोग मिटाने की बात सुनकर आप बोले—भाई ! आप सब कौनसा रोग मिटाना चाहते हैं शरीर का या कर्म का ? इस पर देवों ने कहा—महामुने ! हम तो शरीर का ही रोग मिटा सकते हैं।

देवों की बात सुनकर मुनि ने अपनी अंगुली में थूक लगाकर अङ्गों मे लगाया और वह देखते-देखते काच-सा स्वच्छ एवं निर्मल बन गया। मुनिराज की महान् तपोलब्धि और सहनशक्ति को देखकर देवगण आश्चर्य-चकित हो गए और मुनि के चरण वन्दन कर यथेष्ट स्थान की ओर चले गये।

महामुनि सनत्कुमार अंतसमय समाधिपूर्वक काल करके तीसरे स्वर्ग में इन्द्ररूप से उत्पन्न हुए और वहा से महाविदेह मे जन्म लेकर कर्म-क्षय करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। धन्य है ऐसे तपोधन महात्मा को।

• •

दृढ़प्रहारी

कथांक : २८. गाथांक : ६.

एक ब्राह्मणपुत्र अतिशय दुर्दान्त और अविनीत होने के कारण नगर से बहिष्कृत किया गया। समाज के इस बहिष्कार ने उसकी चण्डता और रुद्रता को और भी सबल बना दिया। संयोगवश घूमते हुए वह किसी चोरपल्ली में पहुँचा और अपनी क्रूरता एवं बहादुरी के कारण चोरनायक का प्रिय पात्र बन गया। दृढ़ प्रहार के कारण इसका नाम दृढ़ प्रहारी पड़ा और मरण काल में चोर-नायक ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

किसी समय वह अपनी चोरसेना के साथ एक गांव पर आक्रमण के लिए पहुँचा। वहां पर भिक्षाजीवी किसी गरीब ब्राह्मण ने याचना कर उस दिन खीर का भोजन बनाया और आप स्नान करने को गया। इसी बीच उसके घर में चोर आया और खीर की थाली लेकर चला गया। जब ब्राह्मण घर आया तो बच्चों ने खीर ले जाने की शिकायत की। क्रोधवश ब्राह्मण चोरों के पीछे मारने को निकल पड़ा। मार्ग में जो भी चोर उसे मिला, परीघा के प्रहार से ब्राह्मण ने सब को मार गिराया।

किसी तरह यह खबर चोर सरदार दृढ़प्रहारी को लगी और वह इसका बदला चुकाने के लिए ब्राह्मण के घर पर पहुँच गया। ब्राह्मण के घर पर एक गाय खड़ी थी जिसने दृढ़प्रहारी को घर में घुसने से रोकना चाहा। दृढ़प्रहारी ने उस पर शस्त्र चला कर काम तमाम कर दिया तथा सामने आते हुए ब्राह्मण को भी मार गिराया।

घर के भीतर पहुंचने पर सगर्भा ब्राह्मणी ने चीख कर कहा—अरे निर्दय ! तूने यह क्या कर डाला ? गाय और ब्राह्मण की हत्या करते हुए तेरे हाथ गल कर क्यों नहीं गिर पड़े ? फिर क्या था उसने सगर्भा ब्राह्मणी को भी मार डाला। ब्राह्मणी के उदर से गिरे हुए गर्भस्थ शिशु को तड़पते देखकर उसके मन में सहसा करुणा का उदय हुआ और वह निर्वेद दशा जंगल की ओर चल पड़ा।

रास्ते में कुछ संयमी मुनिराजों को आते देख कर दृढ़प्रहारी ने उनको आ घेरा और उपदेश देने के लिए कहा। मुनिराज ने उसे धर्मदेशना दी। मुनि के त्यागपूर्ण उपदेश को सुनकर उसका हृदय पश्चात्ताप से भर उठा और उसने विनयपूर्वक मुनि की सेवा मे साधुव्रत अंगीकार कर लिया।

कठोर तप में निरत रहकर तथा परिचित जनों के द्वारा दिए गए विविध उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते हुए छः महीनों में ही उसने घाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान उत्पन्न कर लिया। अज्ञानावस्था में वह जहां कर्मशूर था, ज्ञानोदय होते ही अब तपःशूर बन गया और अल्प समय में ही सकल कर्मों का क्षय कर सिद्धिगति का अधिकारी बन गया।

नन्दीसेन

कथांक : २९. गाथांक : ७.

मगध देश के नंदी गाम में गौतम नाम का एक भिक्षु रहता था। उसकी स्त्री का नाम धारिणी था। धारिणी जब छः मास की गर्भवती थी तो भिक्षु गौतम इस संसार से चल बसा। पुत्रोत्पत्ति के बाद धारिणी भी पञ्चत्व प्राप्त कर गई। अभागे शिशु का पालन-पोषण उसके मामा ने किया और उसका नाम नंदीषेण रक्खा।

लोग बहुधा नन्दीसेन को भ्रम में डालते रहते थे किन्तु मामा के द्वारा समझाए जाने पर वह चित्त को स्थिर कर लेता। उसका रूप इतना बेढ़ब और भद्दा था कि कोई भी लड़की उससे सम्बन्ध करना नहीं चाहती। निर्वेदवश वह आत्महत्या पर उतारू हो गया किन्तु परम दयालु मुनि के उपदेश से उसने इस दुष्कर्म से बच कर महामुनि नन्दिवर्द्धन के पास मुनिव्रत धारण कर लिया। वह निरन्तर बेले २ की तपस्या करते हुए बाल, ग्लान आदि साधुओं की सेवा का कठोर अभिग्रह निभाता रहा।

एक दिन शक्रेन्द्र ने मुनि नन्दीसेन के सेवाभाव की प्रशंसा की। दो देवों ने इसकी परीक्षा करने की ठानी और उनमें एक अतिसार का रोगी बन कर गांव के बाहर रहा एवं दूसरा गांव में आकर नन्दीसेन से बोला कि गांव के बाहर एक बीमार साधु पड़ा है। अगर यहां कोई सेवा करने वाला है तो उठे और उसे संभाले।

नन्दीसेन बेले का पारणा कर रहा था। हाथ का ग्रास छोड़ कर वह उठ खड़ा हुआ और बोला—मुनि को क्या आवश्यकता है? आगत साधु ने

कहा—अभी जल चाहिए। नन्दीसेन ने जल की गवेषणा की पर देवी-माया से अनेकों घरों में घूमने पर भी निर्दोष जल नही मिला। मुनि ने हार नही मानी और दूसरी-तीसरी बार जाकर निर्दोष जल प्राप्त किया और लेकर रोगी साधु के पास पहुँचे।

वह मुनि को दूर से ही आते देखकर गाली देने लगा और क्रोधपूर्वक कहने लगा कि तुम नाम के ही सेवाभावी साधु हो, काम तुम्हारा बिल्कुल नाम के विपरीत है। एक बीमार साधु को संभालना भी तुम्हारे लिए मुश्किल हो गया है, सेवा का और काम तो तुम कहां से कर सकोगे। मगर नन्दीषेण उसकी कटु कथा पर थोड़ा भी ध्यान नही देते हुए, प्रसन्न मन से मललिप्त उसके गंदे शरीर को साफ करने लगा। सफाई के बाद उसने साधु से अभ्यर्थना की कि आप गांव में चलें। वहां थोड़े समय में ही मैं आपको स्वस्थ बना दूंगा। इस पर रोगी साधु ने कहा—यदि मैं चलने की स्थिति में होता तो यहां पड़ता ही क्यों ?

नन्दीसेन मुनि को अपनी पीठ पर बैठा कर गांव की ओर ले चले। देवमाया से मार्ग में चलते हुए ही मुनि ने नन्दीसेन के शरीर को दुर्गंधित मल से लिप्त कर दिया और आक्रोश की भाषा में गाली भी सुनाने लगा। नन्दीसेन अविचल भाव से रोगी के मलत्याग और आक्रोश वचन को सहन करते हुए यही सोचता रहा कि मुनि को कैसे शान्ति मिले। पारणे की चिन्ता भूल कर वह मात्र रोगी मुनि के स्वास्थ्य का ही विचार करता रहा।

मुनि की इस अविचल सेवाभावना और बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार की तप-तत्परता देख कर देव लज्जित हुआ और चरणों में वन्दन कर इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा की बात सुनाकर चला गया। इस प्रकार नन्दीसेन ने नीच गोत्र कर्म का क्षय कर अतिशय पुण्य का संचय किया और भवपरम्परा से मोक्ष के अधिकारी बने।

• •

हरिकेशी

कथांक : ३०. गाथांक : ८.

बात पुरानी है – एक बार एक हरिजन नगर के उच्च लोगों के द्वारा अपमानित होकर किसी जनशून्य स्थान में मरने के लिए झंपा लेने लगा। संयोगवश एक महात्मा उधर से निकले और उसे इस हालत में देख कर कहा कि वेकार क्यों मरते हो ? मरना है तो कुछ करके मरो। व्यर्थ मरने में तो कुछ लाभ नहीं निकलता।

हरिजन को मुनि का उपदेश जंच गया और उसने संयम ग्रहण कर उग्र तपस्या चालू करदी। निष्काम भाव से एकान्त तप के कारण वह देवपूज्य बन गया। एक देव नित्य उनकी सेवा करने लगा।

एक बार तपस्या करते हुए ही मुनि वाराणसी पधारे और मण्डिक यक्ष के मन्दिर के पास ध्यान करने लगे। संयोग से राजपुत्री भद्रा जो वहां देव-पूजा करने को आयी थी, हरिकेशी को देख कर घृणावश मुंह मोड़ कर बोली कि कैसा काला कुरूप है ? और ध्यान करने को बैठा है। इतना ही नहीं उसने घृणा से मुनि की ओर थूक दिया। यक्ष के कोप से राजकुमारी का मुंह टेढ़ा हो गया और बोलना बन्द।

इस घटना से सारे नगर तथा राजपरिवार में कोलाहल मच गया। सब के सब दौड़ कर मुनि के पास आए और उनके चरणों में गिर कर क्षमा याचना करने लगे। यक्ष ने कहा—राजकुमारी इस मुनि से विवाह करने को तैयार हो तभी मैं छोड़ सकता हूं, अन्यथा नहीं। हारकर राजा ने यक्ष की बात स्वीकार करली।

जब मुनि से इस सम्बन्ध की प्रार्थना की गई तो वे बोले कि राजन् ! हम तो साधु हैं, स्त्रीसम्बन्ध का हमारा सर्वथा त्याग है। हमारे लिए स्त्री का स्पर्श तक निषेध है, विवाह कर उसे अपनाने की तो बात ही क्या ? आखिर पण्डितों के परामर्श से राजकुमारी का विवाह पुरोहित से कर दिया गया। मासोपवास की पारणा के लिए मुनि सहसा उसी पुरोहित के यहां पहुंचे जहां पुरोहितजी का यज्ञ हो रहा था। मुनि ने पुरोहित को भी प्रतिबोध दिया और धर्म का मर्म समझाया कि संसार में जाति का महत्व नही है। कोई उच्च जाति का भी होकर नीच कर्मों के द्वारा गर्त में गिर सकता है और नीच जाति का व्यक्ति भी तप के द्वारा उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है। अतः तप की महिमा है, इसे कभी नही भूलना चाहिए। धन्य हैं मुनि हरिकेशी जिन्होने तप के द्वारा जाति और कुल आदि के झूठे गर्व करने वालों का गर्व चूर्ण कर दिया।

• •

ढंढन मुनि

कथांक : ३१. गाथांक : ११.

भगवान नेमिनाथ के समय की बात है — एक बार श्रीकृष्ण ने प्रभु से वंदना करके पूछा कि भगवन् ! आपके १८००० श्रमणों में इस समय सबसे श्रेष्ठ कौन हैं ? प्रभु ने ढंढन मुनि का परिचय दिया । कृष्ण को अपने ही वंश के इस तपोधनी मुनि की प्रशंसा से बड़ा हर्ष हुआ ।

ढंढन मुनि को अभिग्रह था कि अपनी लब्धि से कल्पनीय आहार मिले तभी पारण करना, अन्यथा नहीं । अन्तराय कर्म की प्रबलता से दिन और महीने बीत गए पर कल्पयोग्य भिक्षा का लाभ नहीं हुआ ।

मुनि भिक्षा के लिए नित्य भ्रमण करते फिर भी भिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते किन्तु इस बात का उनके मन पर जरा भी दुःख नहीं था । आहार के अभाव से शरीर कृश हो गया था मगर मुखमंडल पर दिव्य आभा विराज रही थी । वे सर्वदा प्रसन्नमुख दिखाई देते थे ।

एक बार श्रीकृष्ण की इच्छा मुनि के दर्शन की हुई । संयोगवश मुनि नगरी के एक मार्ग से गुजर रहे थे और श्रीकृष्ण उधर ही हाथी से आ रहे थे । दोनों का एक जगह मिलना हो गया । श्रीकृष्ण ने हाथी से उतर कर मुनि को प्रणाम किया और कहा कि — धन्य हो मुनिराज ! तुमसे हमारा वंश आलोकित हुआ है । तुमने अपना ही पथ प्रशस्त नहीं किया वरन् यदुवंश को भी उजागर बनाया । तुम जैसे महापुरुषों से ही निश्चय स्व पर का कल्याण होता है ।

श्रीकृष्ण द्वारा मुनि की महिमा गाए जाने से नागरिकों की श्रद्धा भी मुनि के ऊपर उमड़ पड़ी । वे भक्तिविह्वल होकर मुनि को अपने २ घर ले-

जाने के लिए मचलने लगे। उनमें से एक गाथापति ने अपने घर ले जा कर मुनि को प्रेम पूर्वक मोदक वहराया। निर्दोष समझ कर मुनि ने भिक्षा ग्रहण की और प्रभु के पास आकर बोले कि भगवन्! आज यह आहार मिला है। यह यदि मेरी लब्धि का हो तो मैं इसे ग्रहण करूं ? इस पर नेमिनाथ बोले कि यह तेरी लब्धि का नहीं है।

यह सुनकर ढंढन मुनि बोले कि भगवन्! तब यह मेरे लायक नहीं है। और कुंभार की भट्टी के पास राख में उन लड्डूओं को चूरते - चूरते अपने कर्मदल को भी चूर-चूर कर दिया और क्षपक श्रेणि पर चढ़ कर कषायों को सर्वथा निर्मूल कर वीतराग भाव से केवलज्ञान के अधिकारी बन गए। यह श्रेष्ठ तप का ही फल है।

卐 卐

अर्जुन माली

राजगृही नगरी के मालाकारों में अर्जुन का प्रमुख स्थान था। नगरी के बाहर उसकी विशाल पुष्पवाटिका थी, जहां से प्रतिदिन पुष्प चयन कर, माला बना कर या यों ही बेचा जाता था। यही उसकी एक मात्र आजीविका थी।

एक दिन किसी महोत्सव के प्रसंग में वह अपनी पत्नी के संग पुष्प चयन करने को निकला और अच्छे-अच्छे फूलों को चुन कर सर्वप्रथम "मोगरपाणी" यक्ष को भेंट चढ़ाने की भावना से यक्षालय में पहुँचा और यक्ष देव को प्रणाम करने लगा। इधर नगर के कुछ स्वेच्छाचारी पुरुष जो निरंकुश भाव से यक्षालय के अगल-बगल घूम रहे थे, अर्जुन की स्त्री "बन्धुमती" को देख कर कामोन्मत्त हो गए। उन्होंने अर्जुन माली को बांध कर बन्धुमती से बलात्कार करना चाहा। इसके लिये वे मन्दिर के भीतर छिप कर अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

भावविभोर होकर अर्जुन ने ज्यों ही यक्ष के आगे सिर झुकाया कि उन कामी पुरुषों ने सहसा उस पर हमला बोल दिया और उसे खूब मजबूती से बांध कर उसके सामने उसकी स्त्री बन्धुमती के साथ बलात्कार किया। सचमुच यह घटना अर्जुन के लिए हृदयवेधक थी। उन निरंकुश कामियों के सामने ही बन्धन-बद्ध अर्जुन ने रोष में भर कर अपने प्रणम्य यक्ष को भी बहुत कुछ भला बुरा कह सुनाया।

अर्जुन की भावना से प्रभावित होकर यक्ष ने उसके शरीर को प्रभावित किया, फलतः उसके बन्धन स्वतः टूट गए। बन्धन टूटते ही उन

कामियों पर भीषण प्रहार किया जिससे वे सभी काल के गाल में चले गए। पीछे भ्रष्टा जानकर उसने बन्धुमती को भी मार डाला। उसके मन में अब फूल की कोमलता की जगह कुलिश की कठोरता आ गई थी। नित्यप्रति फूल तोड़ने वाले उस अर्जुन ने अब मानवमुण्ड तोड़ना प्रारम्भ कर दिया था। क्रोध का वेग और प्रतिक्रिया की भावना इतनी उसमें भर गई थी कि जिससे प्रभावित होकर वह नित्य छः पुरुष और एक स्त्री का वध करने लग गया। अर्जुन के डर से उधर का मार्ग बन्द हो गया। नगरी के लोग बहुत चिन्तित हुए और इसके निवारण के लिए अनेकों उपाय सोचने लगे किन्तु उनमें से एक भी उपाय कारगर नहीं हुआ।

संयोगवश एक दिन भगवान् महावीर नगरी के बाहर उद्यान में पधारे। भक्त लोग दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर भी भय के मारे नगरी के बाहर नहीं निकल पाए। श्रेष्ठिपुत्र सुदर्शन को जब इसका पता चला तो उसका मन नहीं माना। माता पिता की आज्ञा लेकर उसने भगवान् के चरणवन्दन में जाने का निश्चय कर लिया।

पुत्र की दृढ़ इच्छा देख कर माता पिता ने सहमते हुए दिल से दर्शन में जाने की अनुमति दे दी। सुदर्शन मन में प्रभु का ध्यान धारण किए हुए घर से चल पड़ा और नगरी के बाहर यक्षायतन के पास पहुँच गया। यक्षायतन के पास पहुँचते ही अर्जुन दौड़ा और सुदर्शन पर प्रहार करना चाहा। दैवी बाधा को सन्मुख उपस्थित देख कर सुदर्शन ने मन ही मन भगवान् के चरणों में वन्दन किया और सावद्य त्याग पूर्वक सागारी अनशन स्वीकार कर लिया। फिर क्या था यक्ष अपनी शक्ति का पूर्ण प्रयोग करके थक गया, पर सुदर्शन के तपस्तेज के सामने उसका कुछ भी नहीं चला। हार कर वह अर्जुन के शरीर से बाहर हो गया।

दैवी उपद्रव के टल जाने तथा अर्जुन के प्रकृतिस्थ हो जाने पर सुदर्शन भगवान् के दर्शन को जाने लगा। सुदर्शन को वहां से जाते देख कर दैवीप्रभाव-मुक्त अर्जुन ने उससे पूछा—श्रीमन्! आप कौन हैं और कहां जा रहे हैं? सुदर्शन ने अपना परिचय दिया और कहा कि यहां पास

में ही पधारे हुए भगवान् महावीर को वन्दन करने जा रहा हूं। अर्जुन ने जिज्ञासा से कहा—क्या मुझे भी प्रभुवन्दन को साथ ले चलेंगे ? सुदर्शन ने कहा—क्यों नहीं, चलिये और अवश्य चलिये।

इस प्रकार अर्जुन माली भी सुदर्शन के साथ प्रभु की सेवा में पहुँचा और उनकी वीतरागमयी वाणी का रसास्वादन किया। प्रभु की देशना सुनकर अर्जुन के मन को किए पाप के प्रति पश्चात्ताप होने लगा। वह अपने द्वारा की हुई हत्याओं के प्रति सोचने लगा। उसने आत्मशुद्धि का एक मात्र उपाय प्रभु के चरणों में अपने आपको समर्पण कर देना समझा। वह खड़ा हुआ और प्रभु से प्रार्थना करने लगा कि भगवन् ! मुझे अपने चरणों में मुनिधर्म की दीक्षा प्रदान करें। तथास्तु, कहकर प्रभु ने अर्जुन को दीक्षित बना कर श्रमणसंघ में शरण प्रदान किया।

अर्जुन अब मुनि बन गया। उसने अपने पापों को निर्मूल करने के लिए आजीवन अभिग्रह धारण किया कि आज से मुझे निरंतर बेले २ की तपस्या करना और जो भी उपसर्ग उत्पन्न हों, उन्हें समभाव से सहन करना।

मुनि अर्जुन छः महीने तक उपरोक्त विधि से उग्र तपश्चर्या करता रहा। भिक्षा के समय परिचित लोग अपने वैर का स्मरण कर गाली देते, प्रहार करते और निन्दनीय वचनों से उसे धिक्कारते मगर वह सम-भाव पूर्वक सब कुछ सहन कर लेता। इस प्रकार अल्पकाल में ही उसने घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान मिलाया और मुक्ति पा ली।

उपशम भाव पूर्वक की गई तपस्या का कितना बड़ा फल है। अर्जुन मुनि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। बड़ा से बड़ा पापी भी तप की आग में तप कर कुन्दन की तरह अवदात बन जाता है। धन्य है ऐसे दुष्कर तप को और उसके आराधक अर्जुन मुनि को।

धन्ना मुनि

किसी समय श्रमण भगवान् महावीर काकन्दी नगरी में पधारे। धन्ना कुमार भगवान् की वन्दना के लिए उनके पास गया और उपदेश सुनकर विरक्त हो गया तथा अपनी माता की आज्ञा प्राप्त कर भगवान् के पास दीक्षित भी हो गया।

दीक्षा लेने के बाद धन्ना मुनि ने अपने मन में ऐसी धारणा की कि प्रभु की आज्ञा लेकर आज से मैं यावज्जीवन बेले-बेले पारणा करूंगा और पारणे मे आयम्बिल करूंगा। वह रूक्षाहार भी घृत आदि के लेप से रहित तथा घर वालो के भोजन से बचा हुआ एवं किसी के लेने योग्य न होगा, मैं उसी की गवेषणा करता हुआ विचरूंगा। इस प्रकार कठोर अभिग्रह धारण कर महाकठिन तप करते हुए धन्ना मुनि विचरने लगे।

संयोगवश कभी आहार मिलता तो पानी नही और पानी मिलता तो आहार नही। जो कुछ भी मिल जाता मुनि उसी से सन्तुष्ट हो जाते और मन में किसी तरह की आकुलता नही लाते थे। सर्प बिल की रगड़ से बचने के लिए सीधा बिल मे प्रवेश करता है। उसी तरह धन्ना मुनि प्राप्त आहार को राग रोष रहित सीधे गले के नीचे उतार लेते।

इस प्रकार उग्र तपस्या करने के कारण धन्ना मुनि का शरीर अत्यन्त दुबला हो गया। उनके अंग २ सूख कर कांटे बन गए और हड्डिया दिखाई देने लग गई। जिस प्रकार भरी हुई गाडी के चलने से शब्द होता है वैसे सोते उठते बैठते मुनि की हड्डियां कर्र-कर्र शब्द करती

थीं। शरीर इतना सूख गया था कि उन्हें बोलने में भी कष्ट होता था। किन्तु तप तेज से वे सूर्य की तरह दीप्त दिखाई पड़ते थे। उनके मुख-मण्डल की छटा तेजोमय बन गई थी।

एक बार ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान् राजगृही पधारे। वन्दना के पश्चात् श्रेणिक राजा ने उनसे पूछा कि भगवन्! आपके इन्द्रभूति आदि समस्त संतों में सब से अधिक तपस्वी और महा निर्जरा करने वाले संत कौन हैं? इस पर भगवान् ने कहा—श्रेणिक! हमारे सन्तों में धन्ना मुनि महादुष्कर क्रिया और निर्जरा करने वाले सन्त हैं। इस पर श्रेणिक धन्ना मुनि के पास आए और अनेक तरह से उनकी प्रशंसा करने लगे। श्रेणिक ने कहा कि तुम से बढ़कर दूसरा और कौन हो सकता है। तुम्हारी प्रशंसा भगवान् भी करते हैं। धन्ना मुनि उस समय भी मध्यस्थ रहे।

एक बार आधी रात बीतने पर धर्म-जागरण करते हुए धन्ना मुनि को विचार आया कि मेरा शरीर तपस्या से सूख चुका है, अब इससे विशेष तपस्या नहीं हो सकती। अतएव प्रातःकाल भगवान् से पूछ कर संलेखना संथारा करना ठीक है। ऐसा सोच कर वे भगवान् के पास आए और संलेखना की आज्ञा मांगी।

भगवान् की आज्ञा पाकर स्थविरों के साथ धन्ना मुनि विपुलगिरि पर आए और स्थविरों की साक्षी से संलेखना संथारा किया। एक महीने की संथारा करके तथा नौ महीने का संयम पालकर धन्ना मुनि सर्वार्थ-सिद्ध विमान में एक भवतारी देवरूप से उत्पन्न हुए।

नव मास के अल्पकाल में ही मुनि ने संसार का अन्त कर लिया यह सद्भावपूर्वक तपश्चरण का ही फल है।

• •

भगवान् आदिनाथ के दीक्षित हो जाने पर भरत विनीता नगरी का राज्य करने लगा। लम्बी तपस्या के बाद हजार वर्षों तक छद्मस्थ रहकर प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

प्रभु की प्रथम धर्मदेशना सुनकर राजकुमारी ब्राह्मी भी दीक्षित हो गई। भरत भी एक श्रावक के रूप से श्रावकधर्म का पालन करने लगा। सुन्दरी भी प्रभु के उपदेश से विरक्त होकर संयम ग्रहण करने लगी किन्तु भरत ने नारी-रत्न होने के नाते, उनको रोक रक्खा। तब उसने श्राविका के व्रत धारण किए। इस प्रकार प्रभु आदिनाथ के कार्यकाल में चतुर्विध संघ की स्थापना हो गई।

एक दिन प्रातःकाल भरत ने भगवान् की वन्दना करके चक्ररत्न का अष्टाह्निक महोत्सव मनाया। बारह वर्ष के बाद महाराज पद का अभिषेक सम्पन्न होने पर भरत ने घर आए छोटे-छोटे राजाओं को एवं परिजनों को विसर्जित किया। अकस्मात् उन्हें सुन्दरी का ध्यान हो आया जो कि इस महोत्सव में शामिल नहीं थी।

चक्रवर्ती भरत ज्यों ही सुन्दरी को देखने के लिए राजमहल पहुँचे कि उसके म्लान मुख को देखकर वे चिन्ताविकल बन गए। सती सुन्दरी ने संयम ग्रहण मे रोके जाने के बाद से ही आयम्बिल प्रारम्भ कर दिए थे। फलतः उसकी शारीरिक दशा अत्यन्त क्षीण बन गई थी। उसकी क्षीणता और कमजोरी देख कर भरत कौटुम्बिक जनों पर बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने

कड़क कर कर्मचारियों से कहा—क्या मेरे यहां भोजन की कमी है जो सुन्दरी कृशकाय तपस्विनी-सी बन गई है ? क्या इस नगर में ऐसा कोई वैद्य नहीं जो इसके रोग का उपयुक्त इलाज कर सके ?

सेवक पुरुषों ने विनम्र भाव से निवेदन किया—भगवन् ! ऐसी बात नहीं है। सुन्दरी देवी बहुत दिनों से आयम्बिल करती हैं। अतः इनका शरीर क्षीण दिखाई देता है। वस्तुस्थिति समझ कर सुन्दरी पर भरत का राग मन्द पड़ गया और उन्होंने खुशी के साथ सुन्दरी को संयम ग्रहण की अनुमति प्रदान कर दी।

सती सुन्दरी ने अपने शील धर्म की अखण्ड साधना के लिए तप को साधन बनाया और उसी के माध्यम से भरत की भावना को सुधार कर अपना कल्याण साध लिया।

● ●

शिवकुमार

विदेह क्षेत्र में वीतशोका नाम की एक नगरी थी। वहां के अधिपति महाराज पद्मरथ की महारानी का नाम वनमाला था। उनके एक मात्र पुत्र था, जिसका नाम शिवकुमार था। वह बहुत ही सुन्दर, विनीत और धर्मनिष्ठ था।

किसी समय वहा के एक सार्थवाह ने घोर तपस्वी सागरदत्त मुनि को बड़ी भावना से आहारादि का प्रतिलाभ दिया। फलस्वरूप देवो ने उसके घर पर वसुधारा की वृष्टि की। शिवकुमार ने जब यह दान की महिमा सुनी तो बड़ा हर्षित हुआ और मुनि की सेवा में जाकर बैठ गया। योग्य समझ कर मुनि ने उसे धर्मोपदेश दिया और बतलाया कि गृह मे रहते हुए धर्म का निर्विघ्न साधन नही होता। अतएव उसे छोड़कर अत्यन्त निर्मल चारित्रधर्म को ग्रहण करना चाहिए।

शिवकुमार ने पूछा—भगवन्! आपके दर्शन से मुझे बड़ा हर्ष होता है तो क्या हमारा और आपका कोई पूर्व जन्म का स्नेह-सम्बन्ध है? अवधिज्ञान के बल से मुनि ने भवदेव के रूप से पूर्व सम्बन्ध का परिचय दिया। शिवकुमार ने कहा—भगवन्! मुझे मुनिव्रत स्वीकार है किन्तु माता-पिता को पूछ कर आपके चरणों मे प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा।

कुमार ने घर पहुँच कर माता-पिता के आगे अपनी भावना प्रकट की और व्रत ग्रहण के लिए अनुमति प्रदान करने की निवेदन किया। इस पर माता-पिता बोले—यदि तू हमारा भक्त है और हमको पूछ कर व्रत

ग्रहण करना चाहता है तो हमारे मुख से कभी दीक्षा की अनुमति नहीं मिलेगी। भला! कौन ऐसे माता-पिता होंगे जो अपने एक मात्र पुत्र को जवानी में संसार त्यागने के लिए कहें और आप राज्य सुख भोगें!

माता-पिता का इस प्रकार स्नेह भरा अवरोध देखकर शिवकुमार वहीं पर सावद्य-कर्मों का परित्याग कर भावसंयम का साधन करने लगे तथा मौन स्वीकार कर भोगों से किनारा कर लिया।

कुमार के इस व्यवहार से राजा बहुत दुःखी और उद्विग्न हो गया। उसने पुत्र को समझाने के लिए नगरवासी इभ्यपुत्र को बुलाया और उसको स्थिति से परिचित कराते हुए कहा—अब जैसे भी हो तुम कुमार को रास्ते पर लाओ एवं भोजन करवाओ। अगर तुम इस काम में सफल हो जाओगे, तो हम तुम्हें जीवनदाता समझेंगे। श्रावक ने विनयपूर्वक कहा—स्वामिन्! मैं अपने भर कोई कसर नहीं रक्खूंगा और जैसा उचित होगा सब प्रयत्न करूंगा।

श्रावक शिवकुमार के पास आकर विधि पूर्वक ईर्याप्रतिक्रमण करके बैठ गया। शिवकुमार ने सोचा, इस श्रावक ने साधु की तरह विनय किया है, तो इससे कुछ इस सम्बन्ध में पूछूं। कुमार ने पूछा—इभ्यपुत्र! मैंने सागरदत्त गुरु के पास साधुओं द्वारा किया हुआ विनय देखा है। तुम ने भी वैसा ही करके कुछ विरुद्ध तो नहीं किया है?

इस पर श्रावक बोला—राजकुमार! जिनशासन में साधु और श्रावकों का सामान्य विनय बताया गया है। श्रमण महाव्रती है तो श्रावक अणुव्रती। आप भी समभाव से भावित होने के कारण वन्दन योग्य हो। आपने व्रत ग्रहण किया यह तो अच्छा पर मैं जानना चाहता हूं—क्या आपने भोजन भी छोड़ रखा है? राजकुमार! शरीर पौद्गलिक है, अतः इसको टिकाने के लिए आहार भी आवश्यक है। आहार के बिना शरीर नहीं और शरीर के बिना संयम साधन भी दुश्शक है।

यह सुनकर शिवकुमार ने कहा—घर में निर्दोष आहार की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए भोजन का त्याग ही अच्छा है। श्रावक ने कहा—

यदि ऐसी बात है तो आज से मैं शिष्य भाव से आपकी सेवा करूंगा और जो आवश्यक होगा निर्दोष रूप में लाकर दूंगा।

श्रावक के विनय भरे आग्रह से शिवकुमार ने बेले-बेले तप और आयम्बिल से पारणा करना स्वीकार किया और बारह वर्षों तक आयम्बिल करते हुए जीवन बिताया। श्रावक ने भी निरवद्य अशनादि से बराबर उसकी सेवा की। गृहवास में रहकर इस प्रकार लम्बे समय तक की तपस्या को निभाना कोई साधारण काम नहीं है। शिवकुमार ने अपनी उज्ज्वल साधना से विद्युन्माली देव के रूप से दिव्य ऋद्धि प्राप्त की और वहां से चलकर जम्बूकुमार के भव में तप संयम की साधना कर मोक्ष के अधिकारी बने।

卐 卐

बलभद्र मुनि

कथांक : ३९. *गाथांक : १८.*

हजारों वर्ष पहले की बात है, द्वारिका में श्रीकृष्ण महाराज राज्य कर रहे थे। सहसा द्वीपायन ऋषि के प्रकोप से द्वारिका का नाश हो गया। श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को लेकर नगरी से बाहर निकल रहे थे कि अकस्मात् दरवाजे की छत टूट पड़ी और माता-पिता दब कर वहीं मर गए।

शोकाकुल श्रीकृष्ण बलभद्र के संग वहां से आगे की ओर बढ़े। धूप तेज थी, प्यास से व्याकुल होकर श्रीकृष्ण एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गए और बलभद्रजी उनके लिए जल लेने को गए। इसी बीच जरासंघकुमार ने, जो शिकार के लिए निकला था, मृग के भ्रम में श्रीकृष्ण पर तीर छोड़ दिया। परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण भी इस संसार से चल बसे।

कुछ समय के बाद बलभद्रजी पानी लेकर आए तो वहां का दृश्य देख कर दंग रह गए। उनका लाया पानी कौन पीता ? पीने वाला तो सदा के लिए पानी छोड़ कर चला गया था। बलभद्र ने समझा – संभव है पानी लाने में देर देखकर भाई रोष में आ गया है और इसीलिए वह अभी न तो पानी पीता और न होश से बातें ही करता है। कुछ देर के बाद वह ठीक हो जाएगा और ऐसा सोचकर उन्होंने श्रीकृष्ण को कन्धे पर बैठा लिया और आप चलने लगे।

श्रीकृष्ण को कांधे पर लिए वे बहुत दूर आगे बढ़ गए। देवों ने जब बलभद्र की यह दशा देखी तो उन्हें दया आगई। बलभद्र को समझाने के लिए एक जगह देव ने कोल्हु में रेती डालकर पीलना प्रारंभ कर दिया।

यह देखकर बलभद्र ने कहा – अरे ! यह क्या कर रहे हो ? रेती से भी कभी तेल निकलता है ? देव ने कहा – रेती से अगर तेल नहीं निकलता तो क्या मृत शरीर भी कभी सजीव बन कर पूर्ववत् व्यवहार कर सकता है ?

देव की बात सुनकर बलभद्र चौंक उठे और उन्होंने भली-भांति भाई के शरीर को देखा। समझ में आगया कि मैं मोह और प्रेमवश अभी तक भ्रम में था। वस्तुतः मेरा भाई अब नहीं है और ऐसा सोचकर उन्होंने श्रीकृष्ण का दाह-संस्कार किया। दाह-संस्कार के बाद बलभद्र को संसार से बिल्कुल विरक्ति हो गई। उन्होंने संयम स्वीकार कर कठोर तपस्या प्रारंभ की।

एक समय मासोपवास की तपस्या के पारणा मे मुनिराज तुल्या नगरी में भिक्षा को पधार रहे थे। मुनि की शरीर-सम्पदा बड़ी ही सुन्दर और आकर्षक थी। तप ने उनकी चमक को और भी बढ़ा दिया था। नगर के बाहर एक कूप पर स्त्रियां पानी भर रही थी, उनकी नजर बलभद्र मुनि पर पड़ी तो सब उनके सौन्दर्य दर्शन में तन्मय हो गईं। एक ने तो धुन ही धुन मे घड़े के बदले अपने बच्चे के गले में ही रस्सा डाल दिया। अन्य नारियां भी बेसुध ही बनी रही।

जब बलभद्र मुनि ने यह समझा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि आगे से मैं नगर में भिक्षा के लिए नही आऊंगा। मुनि वहीं से लौट गए और नगरी के उपवन में ध्यानस्थ हो गए। पारणा की भावना मन से दूर हो गई।

इस तरह ध्यान करते मुनि के कई दिन बीत गए। जंगल के पशु-पक्षी भी महामुनि के साधनामय जीवन के प्रभाव से प्रभवित हो चुके थे। परस्पर वैर रखने वाले जीव भी मुनिराज की तप-पूनीत शीतल छाया में अपने वैर भाव विसरा कर स्नेहपूर्वक रहते थे। एक मृग तो उनका परमभक्त बन गया था। वह मुनि के पारणा की ताक मे इधर उधर देखता रहता था।

एक दिन एक कारीगर जंगल में वृक्ष काटने को आया हुआ था। दोपहर में उसकी स्त्री उसके लिए भोजन लेकर आयी। अवसर देखकर

मृग ने मुनिराज के पास आकर संकेत किया। मुनि भी उसके पीछे २ चल पड़े और वहां जा पहुंचे जहां वह कारीगर बैठा था। सुतार जंगल में मुनि को देख कर अपना बड़ा भाग्य समझा और प्रसन्नापूर्वक अपने आहार में से चार रोटी मुनि को दे दी, सुतार को आहार दान करते देख मृग मन ही मन सोच रहा था कि मैं भी मनुष्य होता तो इसी तरह लाभ लेता।

दोनों की आयु निकट आ पहुंची थी। संयोग से हवा के तेज झोंके के द्वारा वृक्ष की आधी कटी डाली उनके सिर पर गिर पड़ी और आयुपूर्ण कर वे तीनों पंचम देवलोक के अधिकारी बने।

महामुनि वलभद्र के साथ सुतार और मृग का स्वर्गलाभ प्रकृष्ट भावना का ही मधुर फल है।

卐 卐

कुरु देश के हस्तिनापुर नाम के नगर में पद्मोत्तर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम ज्वाला था। पुण्य योग से उसे देव की तरह एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम विष्णुकुमार रक्खा गया। धीरे-धीरे बालक विष्णु बढ़कर जवान हुआ।

कुछ दिनों के बाद महारानी ज्वाला ने पुनः एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम महापद्म रक्खा गया। महापद्म में चक्रवर्ती के सभी लक्षण थे, अतः पिता ने उसको ही युवराज बनाया।

उन दिनों उज्जयिनी नगरी में श्रीधर्म नामक राजा राज्य करता था। उसके मन्त्री का नाम नमुचि था। एक बार मुनिसुव्रत स्वामी के शिष्य सुव्रताचार्य अपने मुनियों के साथ, विचरते हुए उज्जयिनी पधारे। नगरी के लोग बड़ी संख्या में उनके पास जाने लगे। राजा ने मन्त्री से इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि वहां श्रमण आए हुए हैं। राजा ने कहा, तो हम सब भी चलें। मन्त्री ने कहा कि वहां अपने लोगों की जरूरत नहीं है क्योंकि श्रमण वेदविहित धर्म का उपदेश नहीं देते। अगर आप वेदविहित धर्मोपदेश सुनना चाहें तो हम से ही सुनें।

इस पर राजा ने कहा—मन्ने आप उपदेश देते हो फिर भी हमको उनका दर्शन तथा उनके धर्म का उपदेश सुनने में कोई आपत्ति नजर नहीं आती। यह सुनकर मन्त्री ने कहा कि ठीक, चलना कुछ बेजा नहीं है मगर मैं उनसे शास्त्रार्थ करूंगा, आप उसमें मध्यस्थ रहियेगा।

राजा मन्त्री तथा सामन्तों के साथ वहां गए और प्रणाम करके उचित स्थान पर बैठ गए। नमुचि ने अवहेलना के साथ मुनि से कुछ प्रश्न किए किन्तु आचार्य के एक शिष्य ने उनका उत्तर देकर मन्त्री को चुप कर दिया। मन्त्री इससे बहुत दुःखी हुआ और रात में चुपके से तलवार लेकर उन्हें मारने के लिये आया मगर किसी अज्ञात प्रेरणा से वह इसमें सफल नहीं हो सका और वहीं स्तम्भित हो गया। अन्त में राजा ने जिनधर्म को स्वीकार कर लिया।

नमुचि इस अपमान से दुःखी होकर हस्तिनापुर चला आया और वहां महापद्म राजा का मन्त्री बन गया। उस समय सिंहबल नाम का एक दुष्ट सामन्त देश में उपद्रव मचा रहा था। महापद्म ने नमुचि से सिंहबल को पकड़ने का उपाय पूछा। नमुचि ने बुद्धिबल से सिंहबल को गिरफ्तार कर लिया। इस पर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसको वर मांगने के लिए कहा। नमुचि ने कहा—हमारा वर भविष्य के लिए सुरक्षित रहे।

एक बार युवराज महापद्म किसी कारण से नाराज होकर जंगल में चला गया और वहां एक आश्रम में ठहरा। उसी समय जन्मेजय कालनरेन्द्र से हार कर परिवार सहित इधर-उधर भाग निकला। जन्मेजय की दोहित्री मदनावली भाग कर उसी आश्रम में पहुँची हुई थी। वहां महापद्म से उसका स्नेह हो गया।

कुछ दिनों के बाद महापद्म उस आश्रम से चलकर सिन्धुनद नामक नगर पहुँचा। वहां उद्यान का महोत्सव मनाया जा रहा था। महोत्सव के बीच एक मतवाला हाथी बन्धन तोड़ कर भाग निकला। भयभीत स्त्री-पुरुष इधर-उधर भागने लगे। महापद्म ने उसे पकड़ कर बांध दिया। यह खबर वहां के राजा को लगी और उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी सौ कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। किन्तु महापद्म के मन में मदनावली बसी हुई थी।

एक समय रात में सुखपूर्वक सोते हुए महापद्म को कोई विद्याधरी उठा कर वैतालय पर्वत पर बसे हुए सुरोदय नगर में ले गई और वहां

इन्द्रधनुष नामक विद्याधर राजा को सौंप दिया। इन्द्रधनुष ने अपनी पुत्री जयकान्ता के साथ उसका विवाह कर दिया, जिससे उसके ममेरे भाई गंगाधर और महीधर महापद्म पर क्रुद्ध हो गए। उन्हें युद्ध में जीत कर महापद्म विद्याधरों का राजा बन गया। मगर मदनावली के बिना उसे फिर भी चैन नही मिली और वह पुनः उसी आश्रम में चला आया तथा मदनावली के साथ विवाह कर लिया।

विद्याधरों का राजा बन कर महापद्म विपुल वैभव के साथ हस्तिनापुर आया तथा अपने माता-पिता आदि से मिला। उसके आने से सभी परम प्रसन्न हुए।

कुछ दिनों के बाद सुव्रताचार्य हस्तिनापुर नगर में पधारे। विष्णुकुमार और महापद्म के साथ राजा उनकी वन्दना करने को गए। आचार्य के उपदेश से राजा और विष्णुकुमार संसार से विरक्त हो गए तथा महापद्म को राज्य देकर दोनों ने साथ दीक्षा ले ली।

महापद्म भारतवर्ष के नवमे चक्रवर्ती थे। विष्णुकुमार ने दीक्षा लेने के बाद घोर तपस्या शुरु की। उन्हें विविध प्रकार की लब्धिया प्राप्त हो गईं।

कुछ दिनों के बाद जब सुव्रताचार्य हस्तिनापुर मे पधारे तो उन्हें देख कर नमुचि का पुराना विरोध जाग उठा। बदला लेने के उद्देश्य से उसने राजा पद्मोत्तर के दिए हुए वर को मांगा। महापद्म ने उसे देना स्वीकार कर लिया। नमुचि ने कहा—मैं वैदिक ढग से यज्ञ करना चाहता हूं, इसलिए कुछ दिनो के लिए मुझे अपना राज्य दे दीजिये। महापद्म ने मन्त्री की बात स्वीकार करली।

मन्त्री के राजा बनने पर सभी बधाई देने को आए सिर्फ जैन संत नही आए। इस गल्ती को लेकर नमुचि ने जैन श्रमणों को बुलाया और कहा कि तुम सब गन्दे रहते हो, लोकाचार का पालन भी नही करते। सब लोग मुझे बधाई देने को आए किन्तु तुम नही आए। अतः जल्द से जल्द मेरे देश को छोड़ कर निकल जाओ।

यह सुनकर आचार्य ने कहा—महाराज ! जैन मुनियों की ऐसी परम्परा नहीं है। सांसारिक लाभ या हानि में वे उपेक्षा रखते हैं। लोकाचार एवं राजनियमों के विरुद्ध हमने कोई कार्य नहीं किया। आपके राज्य में हम संयमी जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसी दशा में हमें निकालने का आदेश ठीक नहीं है। अगर आप निकालना ही चाहते हैं तो चातुर्मास के बाद हम यहां से चले जाएंगे।

नमुचि ने गरजते हुए कहा—यदि जीवित रहना चाहते हो तो सात दिन के अन्दर इस स्थान को छोड़ कर चले जाओ। नमुचि का निश्चय जानकर मुनि अपने स्थान पर चले आए और सब मिल कर इसी विषय पर विचार करने लगे। किसी ने कहा—विष्णुकुमार मुनि की बात यह नहीं काटेगा, इसलिये उन्हें बुलाने के लिये किसी मुनि को उनके पास भेजना चाहिये।

यह सुन कर आचार्य ने पूछा—ऐसा कौन मुनि है जो जल्दी में वहां जा सके ? इस पर एक मुनि ने कहा—मैं शीघ्र वहाँ जा सकता हूं किन्तु लौट नहीं सकता। इस पर आचार्य ने कहा—तुम चले जाओ। तुम्हें विष्णुकुमार साथ ले आएंगे।

मुनि उड़कर मन्दर पर्वत पर पहुंचा जहां विष्णुकुमार मुनि तपस्या कर रहे थे। मुनि के द्वारा सारी बात सुनने पर विष्णुकुमार लब्धिबल से उस मुनि को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुँच गए। आचार्य आदि को वन्दना करके वे एक साधु को साथ लेकर नमुचि के पास गए। नमुचि को छोड़ कर सब ने उनकी वन्दना की। मुनि ने कहा—वर्षाकाल तक मुनियों को यहीं ठहरने दो। बाद जैसा कहोगे – वैसा ही होगा।

किन्तु नमुचि ने उनकी परवाह किये बिना कहा–पांच दिन ठहरने देने के लिए भी मेरी इजाजत नहीं है। विष्णुकुमार ने कहा—नगर के बाहर उद्यान में ठहर सकते हैं ? नमुचि ने क्रोध में लाल होकर कहा—इन पाखण्डियों को जल्द मेरे राज्य से बाहर निकल जाना चाहिये। यदि ये जीवित रहना चाहते हैं तो शीघ्र मेरे राज्य से बाहर चले जांय।

इस पर विष्णुकुमार को क्रोध आ गया और वे बोले कि — अधिक नही मेरी बात मान कर तुम इन्हें तीन पैर स्थान दे दो। नमुचि ने उत्तर दिया—मगर इतने स्थान से अधिक में किसी को देखा तो सिर काट लूंगा।

विष्णुकुमार ने वैक्रिय लब्धि के द्वारा अपने शरीर को बढाना शुरु किया। उनके बढे हुए विराट् रूप को देखकर सभी डर गए। नमुचि उनके पैरों में गिर कर क्षमा मागने लगा।

संकट दूर होने पर शान्त चित्त होकर विष्णुकुमार फिर तपस्या करने लगे। कुछ दिनो के बाद घाती कर्मों के नाश हो जाने से वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गए। महापद्म ने भी चक्रवर्ती पद को छोड़ कर दीक्षा ले ली और आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष चले गए। विष्णुकुमार आयु पूरी होने पर सिद्ध हो गए।

कठोर तप की साधना का ही यह इष्ट फल है।

● ●

• भावकुलकम् ▶ राजर्षि प्रसन्नचन्द्र

कथांक : ३८ *गाथांक : ४.*

पोत्तनपुर के महाराज सोमचन्द्र बड़े ही धार्मिकवृत्ति के पुरुष थे। एक दिन वे अपनी महारानी धारिणी के साथ बैठे हुए बाल बनवा रहे थे। महारानी ने महाराज के सिर पर एक श्वेत बाल देखा और बोल उठी – स्वामिन् ! दूत आ गया है। राजा ने चारों ओर आंखें दौड़ायीं किन्तु कोई नया आदमी नजर नहीं आया। हार कर उन्होंने व्यंग्य की भाषा में रानी से कहा – देवि ! वास्तव में तुम दिव्य दृष्टि वाली हो। मुझे तो यहां कोई भी दिखाई नहीं देता और तुम्हारी आंखों में दूत रूप भूत नाच रहा है।

यह सुनकर रानी बोली – नाथ ! मैं आपसे झूठ नहीं बोल सकती। मैंने जो कुछ भी कहा है वह सर्वथा सत्य है। आपके घुंघराले काले बालों में अब कहीं-कहीं सफेदी नजर आने लगी है। यह धर्मदूत संदेश देने आया है कि यथाशीघ्र पाथेय तैयार करलो, क्योंकि अब यहां से कूच करना पड़ेगा।

रानी की बातों से राजा का हृदय दुःखी बन गया। सहसा उसके दिमाग में यह बात घर कर गई कि अब जल्द मुझे यहां से चला जाना पड़ेगा। उसकी आंखें भर आयीं और वह जार-बजार रोने लगा। रानी ने राजा के आंसू पोंछते हुए कहा – स्वामिन् ! क्या बुढ़ापे से घबड़ा उठे ? राजा ने कहा – मैं घबराता नहीं किन्तु कुमार बालक होने से सम्प्रति प्रजा-पालन में असमर्थ है। मात्र इसी बात की चिन्ता मुझे सता रही है। पूर्व पुरुषों द्वारा आचरित त्याग मार्ग अभी तक मैंने ग्रहण नहीं किया, अतः कुमार प्रसन्नचन्द्र का संरक्षण करती हुई तुम यहां रह कर राज्य काम

संभालो। मैं तपस्वीपन अंगीकार करता हूं। अब देर करने में भला नहीं है। दूत की बात पर ध्यान देना ही होगा।

रानी भी त्याग के लिए उत्कण्ठित थी। राजा की बात उसे पसन्द नहीं पड़ी। उसने साफ शब्दों में कहा — तुम्हारे विना मैं यहां हर्गिज नहीं रहूंगी। इस तरह उन दोनों ने पुत्र को राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण करली।

प्रव्रज्या ग्रहण करते समय रानी गर्भवती थी पर उसने संकोचवश कुछ नहीं कहा। समय पाकर बालक का जन्म हुआ और वल्कल में रखने से उसका नाम वल्कलचीरी रखा गया। सेवक पुरुषों के द्वारा राजा प्रसन्नचन्द्र ने जब सारी बात जानी तो उसने वल्कलचीरी को किसी प्रकार राजमहल में लाने का निश्चय किया और इस काम में उसे सफलता भी मिली।

एक दिन वल्कलचीरी पिता के आश्रम में पहुंचा और तपस्वियों के उपकरण को देख कर चिन्तन करते जातिस्मरण प्राप्त कर गया। संयोगवश पोतनपुर के उद्यान में भगवान् महावीर का समवसरण हुआ। म० प्रसन्नचन्द्र अपने समस्त परिवार के साथ सेवा में पहुँचे। तीर्थंकर भगवान् की परम मनोहर वीतरागवाणी को सुनकर विरक्त हो गए और बालक पुत्र को राज्य देकर दीक्षित हो गए।

तप संयम की आराधना करते हुए किसी दिन म० प्रसन्नचन्द्र राजगृही के बाहर ध्यान मुद्रा में खड़े थे। राजा श्रेणिक भी भ० महावीर को वन्दन करने के लिए अपने सैन्यवर्ग के साथ उधर से ही निकला। प्रसन्नचन्द्र को ध्यानमग्न देखकर सेना के अग्रगामी दो पुरुषों में एक ने कहा — यह महात्मा बड़ा ही तपस्वी है। स्वर्ग या मोक्ष इसके लिए हस्तगत हैं। दूसरे ने कहा — अरे! यह तो प्रसन्नचन्द्र है जो बालपुत्र को राज्य देकर स्वयं मुनि बन गया। आजकल मंत्रियों और सामन्तों के द्वारा राजकुमार संकट में घिरा हुआ है न मालूम उसका राज्य रहेगा या नहीं?।

ध्यानमग्न महाराज प्रसन्नचन्द्र ने सैनिक की उक्त बातें सुनलीं। वे सोचने लगे — जिन मंत्रियों को आज तक हमने पुत्र की तरह पाला वे ही

इस समय मेरे पुत्र के विरुद्ध षड्यंत्र करने पर उतारु हो गए हैं। ध्यान में ही युद्ध करने लगे। विचारों की कलुषता के कारण उन्होंने सप्तम नरक के योग्य कर्मदल संचय कर लिया किन्तु शत्रु पर प्रहार करने के लिए ज्योंही सिर का मुकुट लेने को हाथ बढ़ाया तो मुंडित सिर पर हाथ पड़ते ही यकायक विचार बदल गया। सोचने लगे अहो! मैंने आत्मसाधन छोड़ कर पर पदार्थों के लिए उन्मार्ग गमन कर अच्छा नहीं किया। इस तरह पश्चात्ताप और प्रतिक्रमण से आत्मशुद्धि करते हुए क्षणों में ही वे घातिकर्म का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर गए।

महाराज श्रेणिक ने भ० के चरणों में प्रश्न किया प्रभो! यह मुनि इस समय काल करे तो कहाँ जावे? प्रभु ने कहा – सप्तम पृथ्वी। फिर कुछ क्षण के बाद देवलोक के योग्य स्थिति बतलाई। इतने में केवलज्ञान की महिमा के लिए देवों का गमनागमन और देव दुंदुभी की आवाज सुनाई पड़ी। प्रभु ने कहा – राजन्! प्रसन्नचन्द्र को केवलज्ञान हो गया है। क्षण भर पहले जो भावनरक के पातालों में भटकता रहा; क्षण भर के बाद आए हुए उच्च भाव ने सहज ही आत्मा को भवबन्धन से मुक्त कर मुक्ति का अधिकारी बना दिया। यह भाव की ही महिमा है।

• •

सती मृगावती

कौशाम्वीपति महाराज शतानीक की चण्डप्रद्योतन के साथ युद्ध मे मृत्यु होने के बाद महारानी मृगावती ने कुशलता के साथ प्रिय पुत्र उदायन का संरक्षण किया और चण्डप्रद्योतन की कुटिल चाल से वह अपने शीलधर्म को वचाती रही।

चण्डप्रद्योतन ने भी मृगावती को अपनाने का दृढ सकल्प कर रक्खा था। इसलिए उसने चारो ओर से कौशाम्बी को घेर रक्खा था ताकि हारकर रानी को उसका साथ देना पडे। सयोगवश उसी स्थिति मे भगवान् महावीर कौशाम्बी मे पधारे। चण्डप्रद्योतन और रानी मृगावती आदि प्रभु के समवसरण मे गए। प्रभु का उपदेश सुनकर मृगावती ने वही पर सयम ग्रहण की भावना प्रगट की और चण्डप्रद्योतन की सहमति से वह दीक्षित भी हो गई। सयमग्रहण के पश्चात् वह महासती चन्दनवाला के पास ज्ञानाराधन करती हुई सम्यक् रीति से सयम-धर्म का पालन करती रही।

एक समय सतीवृन्द के साथ सती मृगावती प्रभु के समवसरण मे गई हुई थी। भक्ति की तल्लीनता और देवगण की उपस्थिति से सूर्य चन्द्र तुल्य प्रकाशमय प्रभा के कारण उसे समय का भान नही रहा। वह रात को भी दिन समझ बैठी थी। सहसा देवगण के चले जाने पर जव प्रकाश वन्द हो गया और चारो ओर कालिमा छा गई तव वह आकुलता से सहम कर महासती चन्दनवाला की सेवा में चली आई।

चन्दनबाला ने विलम्ब से आने के कारण उपालम्भ की भाषा में उनसे कहा—आर्ये ! तुम उच्च-कुल-प्रसूत हो। तुम्हें अपनी कुलीनता का ध्यान रख कर इतनी देर से नहीं आना चाहिए। रात को बाहर रहना साध्वीधर्म के विरुद्ध ही नहीं अपितु सामान्य नारी आचार के भी विपरीत है। मृगावती चन्दनबाला की भर्त्सना को उचित समझ कर अपनी भूल का पश्चात्ताप करती हुई सोचने लगी कि मेरे कारण ही गुरुणीजी को खेद हुआ है। मैंने यह कैसी भूल की ! अध्यवसाय की निर्मलता से क्षणों में ही घाती कर्म का क्षय कर मृगावती ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

घाती कर्म के क्षय से अब उनके सोने का कोई कारण नहीं रहा। वह चन्दनबाला के पास ही बैठी रही। अकस्मात् एक काला विषधर उधर से निकला जिधर निद्रामग्न महासती का हाथ लटक रहा था। मृगावती ने सती के लटकते हुए हाथ को उठा कर ऊपर कर दिया। सहज शरीरस्पर्श से चन्दनबाला चमक उठी और बोली कि कौन है ? मेरे हाथ का स्पर्श क्यों किया ? मृगावती ने उत्तर देते हुए कहा—मैंने सांप से बचाने के लिये आपके हाथ को उठा कर ऊपर किया है। कृपा कर इस भूल को क्षमा करें।

चन्दनबाला ने कहा—इस घोर अन्धकार में तुमने कृष्ण सर्प को कैसे देखा ? मृगावती बोली—आप ही की कृपा से। क्या तुम्हें कोई ज्ञान हुआ है ? और वह प्रतिपाती है या अप्रतिपाती ? मृगावती ने कहा—अप्रतिपाती।

चन्दनबाला को यह जानकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उसने केवली की आशातना कर डाली है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए महासती चन्दनबाला ने भी घाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। यह सब भावविशुद्धि का ही चमत्कार है।

● ●

इलापुत्र

इलावर्धन नगर के सेठ धनदत्त की स्त्री का नाम धनवती था। सब तरह की सम्पदा होते हुए भी वह पुत्रसुख से वंचित थी। अतएव उसका मन सतत दुःखी बना रहता था। किसी ज्योतिषी के विचार से पुत्रप्राप्ति के लिए सेठ नगर की इलादेवी की उपासना करने लगा। देवी प्रसन्न हुई और वर मांगने को कहा — सेठ ने पुत्र प्राप्ति का वर मांगा। भाग्यवश इलादेवी के प्रभाव से धनवती को एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिए उस पुत्र का नाम इलापुत्र रक्खा।

सोलह वर्ष की उम्र में वह अपने मित्रों के साथ घूमने फिरने को निकला। रास्ते में एक जगह नट का नाटक हो रहा था, अतः वे सब उसे देखने को खडे रह गए। इलापुत्र की दृष्टि नाटक देखते २ नट की रूपवती पुत्री जो कि मृदंग बजा रही थी, उस पर पडी। इलाची उसके रूप पर मुग्ध हो गया और उससे परिणय करने का निश्चय किया।

इलापुत्र अपने मन में क्रोध एवं उदासी छिपाने के लिए बिना किसी को कुछ कहे, घर आकर एक खाट पर सो गया। संध्या हो गई फिर भी वह उठा नहीं। माता-पिता ने कारण पूछा मगर उसने कुछ बताने से इन्कार किया। आखिर उसके मित्र ने आकर बताया कि वह नटपुत्री के साथ विवाह करना चाहता है।

सेठ ने नटपुत्री की अपेक्षा अपनी जाति की एक से एक बढ़ कर सुन्दर कन्या के साथ सम्बन्ध कराने के लिए बहुत कहा मगर वह राजी नहीं हुआ। हार कर माता-पिता ने नट से उसकी पुत्री की मांग की तो नट ने जवाब दिया कि तुम्हारा बेटा हमारी कला में निपुण बन कर किसी राजा

को अपनी नट-कला दिखाये और राजा से प्राप्त धन से हमारी जाति का पोषण करे तो मैं अपनी पुत्री दे सकता हूं। इलापुत्र ने उसकी यह शर्त स्वीकार करली और थोड़े ही दिनों में नट-कला में वह पारंगत बन गया।

नटों के साथ गांव-गांव घूमते हुए एक दिन इलापुत्र वेनातट नगर पहुंचा और वहां के राजा से नाट्य-प्रयोग देखने की प्रार्थना की। राजा ने उसकी विनती स्वीकार कर ली। नियत समय पर राजा और राज्य के कर्मचारी तथा नागरजन खेल देखने को उपस्थित हुए। नाटक देखकर सब आश्चर्यचकित हो गए। वांस पर अनेक प्रकार का खेल दिखाकर इलापुत्र ने राजा सहित सबको प्रणाम किया। इस पर राजा ने कहा—हमने तुम्हारे खेल ठीक से नहीं देखे – अतः फिर से दिखाओ। नटपुत्री पर मोह उत्पन्न होने के कारण राजा फिर से खेल देखना चाहता था और चाहता था किसी तरह यह लड़का वांस से गिर जाय ताकि इस नटपुत्री को मैं रखलूं।

दूसरी ओर रानी इलापुत्र पर मुग्ध हो गई थी। इलापुत्र ने फिर से खेल दिखाया किन्तु राजा फिर भी प्रसन्न नहीं हुआ और पुनः खेल दिखलाने को बोला। इलापुत्र ने तीसरी वार वांस पर आरोहण किया परन्तु इस वार उसकी आंख वांस पर से हट कर एक महल पर चली गई जहां एक रूपवती सुन्दरी साधु को मोदक वहरा रही थी। इलापुत्र ने सेठानी और नटनी की तुलना की तो हसनी के आगे कागलो जैसी प्रतीत हुई। उसने सोचा कि फिर मुझे इस पर इतना मोह क्यों हो रहा है। धन्य हैं मुनि जो सेठानी पर से नजर हटाकर मोदक ग्रहण कर रहे हैं। वह मुनि के मन पर विचार करते हुए अन्तर्मुख वन गया।

उसके मन पर छाया हुआ मोह का कुहरा दूर होगया। उसे मालूम हुआ कि त्रिलोक में सबसे सुन्दर आत्मा है। संसार के अन्य सभी पदार्थ नाशवान और क्षणभंगुर हैं। इस प्रकार सोचते २ उसे वांस पर ही केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया। वह चला तो था नटपुत्री से स्नेह करने। जिसके लिए उसे कितने ही कष्ट उठाने पड़े, पर शुभ-भावना के उदय से वह खेल खेल में ही संसार के सारे खेलों से सदा के लिए अलग हो गया। परम शान्त पद का अधिकारी वन गया। यह भाव की महिमा है।

• •

कपिल मुनि

कौशाम्बी के राजा जितशत्रु के यहां काश्यप नाम का एक ब्राह्मण पण्डित था। वह चौदह विद्याओं मे पारंगत तथा राजधानी के अन्य सभी पण्डितों में अग्रणी था। राजा ने उसे मान के साथ जीविका भी दी। उसकी गुणवती भार्या ने एक पुत्ररत्न को उत्पन्न किया जो कपिल नाम से आगे विश्वविख्यात बना।

दैववश कपिलदेव को पिता को ओर से मिलने वाला सुख अधिक दिनों तक प्राप्त नहीं हो सका। अकस्मात् किसी रोग विशेष के कारण राजपण्डित काश्यप का देहान्त हो गया और कपिलदेव की अज्ञानता के कारण जितशत्रु ने राजपण्डित के पद पर किसी दूसरे ब्राह्मण को रख लिया। अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के बल पर थोड़े ही दिनों में वह भी काश्यप की तरह राजा का पूर्ण विश्वासपात्र बन गया।

एक दिन वह राजभवन मे अपने घर को जा रहा था कि रास्ते में काश्यप की पत्नी यशा ने उसको देखा। उसको देखते ही उसे अपने पति के जमाने की याद आ गई और वह फूट २ कर रोने लगी। कपिल ने रोने का कारण पूछा तो माता बोली कि जिस प्रकार इस समय राज्य मे इस ब्राह्मण की प्रतिष्ठा हो रही है, उसी प्रकार तेरे पिता की भी प्रतिष्ठा थी। मगर तेरी मूर्खता के कारण वह पद आज अपने घर से दूर चला गया। मुझे सहसा अपने पति के अतीत की याद हो आयी और उसी से आंखों में आंसू उमड़ आए।

कपिल बोला—मेरी प्यारी मां ! तू अब इसके लिए अधिक रो मत। मैं जल्द ही विद्याध्ययन कर पुनः अपने घर के खोए पद को प्राप्त करूंगा। यह सुन कर माता बोली कि यहां तो तुम्हें इस राजपण्डित की धाक से कोई पढ़ाना नहीं चाहेगा, अतः तुम श्रावस्ती चले जाओ। वहां इन्द्रदत्त नाम का तेरे पिता का एक मित्र रहता है। वह तुझको पढ़ायेगा।

कपिल माता की आज्ञा मान कर श्रावस्ती इन्द्रदत्त के घर पर पहुँचा और अपना पूरा परिचय दे दिया। पण्डित ने भी मित्र का पुत्र समझ कर कपिल का उचित सत्कार किया तथा उसे विद्याभ्यास कराने का वचन भी दिया। परन्तु इन्द्रदत्त जितना बड़ा विद्वान् था उतना ही बड़ा दरिद्र भी। वह अपने कुटुम्ब का निर्वाह भी मुश्किल से कर पाता था। अब कपिल की और फिकर पड़ गई। उसने उसी नगर के सेठ शालिभद्र को अपनी यह वेबसी बताई तो उसने कपिल के भोजन का प्रबन्ध अपने घर पर ठीक करा दिया। अब तो कपिल निश्चिन्त होकर विद्याभ्यास करने लगा।

संयोगवश शालिभद्र के घर में एक रूप-लावण्यमयी दासी थी। जवानी उसमें फूट रही थी, इधर कपिल भी ब्रह्मचर्य के तेज से दमक रहा था। नित्य के अधिकाधिक परिचय से वे दोनों एक दूसरे के प्रेमजाल में फंस गए। फिर क्या था ! कपिल की कार्यदिशा ही बदल गयी। अब उसका मन पुस्तक से अधिक दासी के हाव-भाव की ओर मुड़ गया।

गुरु ने वस्तुस्थिति जानकर कपिल को बहुत कुछ समझाया किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। कपिल ने दासीत्याग के बदले विद्याभ्यास को ही तिलांजलि दे दी।

कुछ समय के बाद दासी गर्भवती हो गई और उसने कपिल को अपने भरण-पोषण के लिए कहा। कपिल यह सुनकर चिन्तित हो गया। दासी ने उसकी चिन्ता दूर करने के लिए कहा कि इस नगर के महाराज बड़े उदार हैं। वह प्रातःकाल सर्वप्रथम आकर बधाई देने वाले ब्राह्मण को दो मासे सोना देता है। अतः नित्य प्रातः सब से पहले जाकर आप

दो माशे सोना ले श्राइए। इससे श्रपना गुजारा हो जायेगा। कपिल ने उसके कथनानुकूल प्रातः जाने का निश्चय कर लिया परन्तु मुझ से भी पहले कोई न चला जाय, इस भय से वह श्राधी रात को ही घर से चल पड़ा। चोर समझ कर वह सिपाहियों के द्वारा पकड़ा गया।

प्रातःकाल न्याय के लिए वह राजा के सामने उपस्थित किया गया। कपिल ने राजा से श्रपराध के वारे में पूछे जाने पर श्रपनी वीती सारी कहानी यथावत् वता दी। राजा कपिल की सत्यवादिता से वहुत प्रसन्न हुश्रा श्रौर उसे वन्धनमुक्त कर कुछ मांगने को कहा। कपिल ने उत्तर दिया कि महाराज! कुछ सोचने के वाद मांगूंगा। राजा ने उसे सोचने के लिए समय दिया श्रौर वह पास के वगीचे में चला गया।

वह वगीचे में मन ही मन सोचने लगा कि राजा से क्या मांगूं ? हजार, श्ररे वह तो लाख से वहुत कम है श्रौर लाख! वह भी करोड़ के सामने तुच्छ है। वह मन ही मन तृष्णा को धिक्कारने लगा कि कहां दो माशे सोना श्रौर श्रव कहां करोड़ मुहरों पर भी श्रसंतोष। धिक्कार है मुझे जो मैं एक कुलीन बन कर तृष्णा के जाल मे फंस कर इस हीन दशा में चल श्राया। इस तरह सोचते २ उसे जातिस्मरण ज्ञान हो श्राया श्रौर वह साधु वन गया।

साधु का रूप धारण कर कपिल जब राजा के पास से जाने लगा तो राजा ने कहा—क्या श्रव भी तुमने कुछ मांगने का निश्चय किया या नहीं ? इस पर कपिल मुनि वोले कि राजन्! लाभ से लोभ बढ़ता है श्रौर इसका कोई श्रन्त नही मिलता। तृष्णा श्राकाश के समान श्रनन्त है। इसलिए इसका सर्वथा त्याग करना ही मैंने श्रव श्रेयस्कर समझा। श्रव तो मेरे लिए लाख राख श्रौर करोड़ कौड़ी से कुछ श्रधिक महत्व नही रखता। ऐसा कह कर मुनि श्रागे वढ़ चले।

सतत संयम की श्राराधना में विचरते हुए कपिल मुनि के छ मास वीत गए। उनके घाती कर्म नष्ट हो चले श्रौर वह केवली बनकर कपिल केवली के नाम से जग में प्रख्यात हुए।

मुनि कूरगडु

वालमुनि क्रूरगडू क्षुधा की ज्वाला को सहन करने में बहुत असमर्थ थे। अधिक तो क्या वे एक याम भी आहार के विना नहीं रह पाते। मुनि जीवन की अन्य साधना को वे सरल समझते थे किन्तु उपवास को निभाना उनके लिए महा कठिन होता था।

एक वार किसी पर्व के निमित्त से मुनिमंडल को तपस्या थी। किसी ने अष्टम तो किसी ने षष्ठ किए थे। उपवास से कम किसी को नहीं था। क्रूरगडू मुनि को भी मुनिपरम्परा के अनुसार उपवास करना था किन्तु दोपहर के बाद वे क्षुधा की व्याकुलता को सहन करने में असमर्थ हो गए। हार कर गुरु की अनुमति लेकर भिक्षा के लिए निकल पड़े।

पर्व के कारण कई घरों से खाली ही लौटना पड़ा। अन्त में एक घर में रूखा क्रूर का भोजन प्राप्त हुआ। मुनि उसी से सन्तुष्ट होकर चले आए। गुरु के चरणो में विधिवत् वन्दन कर उन्होने आहार बताया। गुरु सहज ही मुनि की क्षुधावृत्ति पर विचारशील बने रहते थे किन्तु आज व्रत के दिन मे भी मुनि का आहार ग्रहण करना, गुरु के महान् असन्तोष का कारण वन गया। उन्होने उपेक्षाबुद्धि से थूक दिया जो समीपवर्ती आहार पात्र में ही गिर पड़ा।

गुरु की इस क्रिया में वालमुनि को सहजभाव से अपना ही दोष दिखाई पड़ा। उन्होंने मन ही मन सोचा कि स्थविर मुनि को श्लेष्मपात्र देना मेरा कर्तव्य था। मैंने सेवा में उपेक्षा की, फलतः खेदपूर्वक गुरु को

यों थूकना पड़ा। गुरु की सेवा में उपेक्षा करने वाला शिष्य कभी भी आत्मकल्याण नहीं कर पाता। इस तरह सोचते हुए मुनि भोजन पर बैठ गए।

भोजनकाल में भी उनका मन संकल्प विकल्पों का जाल बुनता रहा। रह रह कर वे अपनी मानसिक दुर्बलता पर पछतावा करते और यह सोचते रहे कि अनन्त शक्ति का पुंज होकर भी मैं आहार के लिए विकल हो जाता हूं। हमारे ही कितने भाई मास मास भर विना आहार के समय विता देते है और उनका कुछ नहीं बिगड़ता। और मैं थोड़ी देर भी भूखा नहीं रह सकता। यह हमारी कमजोरी निश्चय ही चिन्तनीय है। अनन्त ज्ञानगुण-सम्पन्न आत्मा के लिए यह कथमपि ठीक नहीं। इस तरह शुद्ध भावना से चिन्तन करते हुए मुनि ने घाति कर्मो का क्षय कर केवलज्ञान मिला लिया।

वास्तव में यह एक आदर्श उदाहरण है कि जहां निरन्तर लम्बी तपस्या करने वाले मुनि भावशक्ति की कमी के कारण ज्ञान की निर्मल ज्योति नहीं मिला सके, वहां इस बालमुनि ने विना एक दिन की तपस्या किए भी आत्मनिरीक्षण के बल से पूर्ण ज्ञान मिला लिया।

सचमुच में भाव की महिमा अपरम्पार है। वह एक ओर प्रसन्नचन्द्र ऋषि की तरह विना द्रव्यहिंसा के नरक के निकट पहुँचा देता है तो दूसरी ओर शुद्ध विचारों से चिर संचित मलिन विचारों का क्षय कर आत्मा को कैवल्य के निकट भी पहुंचा देता है। धन्य है सुभावनाभावित ऐसी आत्मा को।

• •

• गाथकुलकम्

मरुदेवी

कथांक : ९३ गाथांक : १०

भगवान् आदिनाथ की माता मरुदेवी को कौन नहीं जानता होगा। युगलिक युग के अन्त में, सिद्धि पाने वाली नारियों में आपका स्थान सर्वप्रथम है। आपका पुण्यबल अनुपम था और स्वभाव की सरलता, नम्रता अजोड़ थी।

भगवान् आदिनाथ के दीक्षित हो जाने पर आप बहुधा सोचती रहती थीं कि इतनी बड़ी राज्यलक्ष्मी के होते हुए भी मेरा प्यारा पुत्र भूखा, नंगा एवं मलिन रूप में क्यों घूम रहा है? पुत्रशोक से विकल माता को देखकर भरत ने प्रार्थना की—माँ! चलो मैं तुम्हें भगवान् की विभूति का दर्शन कराता हूं। देव घूमते हुए विनीता के बाहर ही पधार गए हैं।

भगवान् के पधारने की बात सुनकर मरुदेवी बड़ी प्रसन्न हुई और हाथी पर बैठ कर पौत्र के साथ प्रभु-दर्शन को गयी। समवसरण के निकट पहुँचकर जब देवों के गमनागमन के विमान दृष्टिगोचर होने लगे तो भरत ने कहा—माँ! देखो देव की यह आश्चर्यकारिणी प्रभुता है। इसके सामने मेरी राज्य-लक्ष्मी की क्या सत्ता है?

मरुदेवी बड़े स्नेह और उत्सुकता भरे नयनों से आदिनाथ की ओर देखती एवं सोचती रही कि मेरा लाल निश्चय अब मुझे कुछ कहेगा। पर आदिनाथ तो वीतराग थे। मां और पुत्र का ममत्त्वभाव न जाने कब उनके मन से दूर हो गया था। संसार की समस्त नारियां उनके लिए समानमान बन गई थीं। किसी के प्रति राग और द्वेष के लिए अब यहां कोई गुंजाइश

ही नहीं रह गई थी। मरुदेवी के प्रति उनके मन में जरा भी राग का उदय नहीं हुआ।

इधर मरुदेवी की भी अजीब दशा थी। वह एकचित्त से प्रभु की निस्पृहता एवं वीरागता का विचार करती हुई अध्यवसायों की शुद्धि से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की अधिकारिणी बन गई।

भरत क्षेत्र में मातृसिद्ध का यह पहला उदाहरण था। इसे अतीर्थ-सिद्ध भी कहा जाता है। चिरप्रव्रज्या और साधना के बिना भी मरुदेवी ने सिद्धि प्राप्त करली।

卐

बात बहुत पुरानी और अपने ढंग की निराली है। पुष्पभद्र नगर मे पुष्पकेतु नाम का एक राजा राज्य करता था। राजा और प्रजा मे दूध और पानी का सम्बन्ध था। वे परस्पर इस तरह मिले हुए थे कि उन्हें अलग कर समझना कठिन था।

एक बार पुष्पकेतु ने प्रजाजनो की एक सभा बुलायी और सब के सामने अपनी बात प्रगट करते हुए कहा कि मैं अपने पुत्र पुष्पचूल का अपनी पुत्री पुष्पचूला के साथ विवाह करना चाहता हूं। भाई-बहन का सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप मे बदलने से आप सब को कोई आपत्ति तो नही है? अगर इससे आप सब असहमत हो तो अपनी स्पष्ट राय दें।

राजा का यह बेढंगा और अनोखा विचार सुन कर प्रजा अवाक् रह गई। कभी किसी ने यह सोचा भी न था कि कोई भाई और बहन पति-पत्नी भी बन सकते हैं और वह भी राजवश में, जहा न तो बालको की कोई कमी है और न कन्या की। मगर राजा की बात काटने की हिम्मत किसी की न हुई और सब मूर्तिवत् जड बने रहे।

प्रजा को चुप देख कर राजा ने पुन. कहना प्रारम्भ किया कि भाई-बहन के विवाह की बात सुनकर आप सब आश्चर्य मे पड गए हैं किन्तु यह आश्चर्य का विषय नहीं है। पहले के जमाने मे एक साथ पैदा होने वाले भाई-बहन बडे होकर पति-पत्नी का रूप धारण कर लेते थे। भगवान् ऋषभदेव के जमाने मे पहले युगलियो के युग मे ऐसा ही होता था।

विवाह के लिए आवश्यक शर्त है स्नेह और वह दोनों में बचपन से ही इतना अधिक है कि वे एक दूसरे के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकते। अगर इन दोनों का विवाह अलग २ करा दूंगा तो दोनों भाई-बहन की जिन्दगी दुःखमय बन जायेगी। ये परस्पर एक दूसरे के वियोग को सह नहीं सकेंगे। कोई भी पिता अपनी सन्तान को जो उसे जान से भी प्यारी होती है, ऐसा दुःख देना नहीं चाहेगा जिससे कि वह जीवन भर घुट-घुट कर दम तोड़े।

राजा की निष्कपट बातों को सुन कर प्रजाजनों ने कहा—राजन्! पुत्र और पुत्री आपकी है। आप जैसा उचित समझें करें। हम सब को कोई उज्र नहीं है। सभा समाप्त हुई और प्रसन्नमुख राजा भी अपने राजमहल में लौट आया।

रानी को जब इसका पता चला तो वह भी राजा को समझाने लगी कि आपका यह काम धर्म के विरुद्ध है और कदाचित् धर्म के विरुद्ध न भी हो फिर भी लोकविरुद्ध काम आपको हर्गिज नहीं करना चाहिये। मगर पुष्पकेतु ने उसकी एक भी नहीं सुनी और दोनों भाई-बहन का परस्पर विवाह कर दिया। अब वे दोनों भाई-बहन न रहकर पति-पत्नी बन गए।

सुहागरात आयी और पुष्पचूला दुलहिन बनी अपने भाई के इन्तजार में बैठी थी। शर्माता हुआ पुष्पचूल भी बहिन, जो कि प्रियतमा बना दी गई थी, के मिलनकक्ष में अपनी मधुर भावनाओं के संग दाखिल हुआ। उसने पुष्पचूला को प्रिये! कहकर पुकारा किन्तु पुष्पचूला ने कहा—भाई! ऐसा तुम्हें नहीं कहना चाहिए। विवाह मात्र से हम दोनों का वह अखण्ड सम्बन्ध कभी खण्डित नहीं हो सकता।

पुष्पचूल ने कहा—पगली! अब ऐसा क्यों बोलती है। भला पति-पत्नी भी कहीं भाई-बहन होते हैं? इस पर पुष्पचूला बोली कि मैं ठीक कह रही हूं। भले ही दुनियां हमको पति-पत्नी समझे पर हम तो भाई-बहिन हैं और आगे भी रहेंगे। शरीरसुख के लिए भाई-बहिन का अटूट और मधुर सम्बन्ध कभी तोड़ा नहीं जा सकता। इस तरह सुहागरात

की मधुर कल्पना कपूर की तरह हवा में उड़ गई और उन दोनों भाई-बहिन का पूर्वस्नेह ज्यों का त्यों बना रह गया, मगर संसार की आखों में वे पति-पत्नी ही बने रहे।

धीरे-धीरे समय बीत चला और राजा पुष्पकेतु तथा उनकी रानी भी इस संसार से चल बसे। भाई राजा और बहिन रानी बनकर प्रजा पर शासन करने लगे। पुष्पचूला का मन राजमहल में नही लगता था और वह वैराग्य लेना चाहती थी। संयोगवश उसे एक बार आचार्य अन्निकापुत्र का उपदेश सुनने को मिला। उस उपदेश का उसके मन पर अच्छा असर पड़ा और वह अपने भाई से दीक्षा की आज्ञा लेने को तैयार हो गई। पुष्पचूल ने कहा--दीक्षा लेकर भी अगर तुम यहीं रहो तो हमें कोई उज्र नहीं। आचार्य वृद्ध थे, उन्होंने दीक्षा लेने के बाद भी पुष्पचूला को वहां रहने की आज्ञा दे दी।

रानी पुष्पचूला अब साध्वी बनकर उपाश्रय में रहने लगी। उसने अपने समस्त राजभोग को छोड़ कर साधुयोग का पल्ला पकड़ लिया। उसने संन्यास को अपने जीवन में इस तरह उतारा कि वे अब उससे अलग नही हो सकते थे। फलतः दिव्य ज्ञान की महान् ज्योति उसके हृदय में उत्पन्न हो गई। केवलज्ञान पाने के बाद भी उसने गुरु-सेवा में किसी तरह की कोई कमी नही आने दी।

एक दिन वह कार्यवश बाहर गई। सर्वत्र बरसात का पानी फैला हुआ था। उसके लौट कर आने पर गुरु ने कहा—तुम पानी में बाहर गयी सो अच्छा नहीं किया। इस पर पुष्पचूला बोली—महाराज! मैं उचित पानी पर ही पैर देकर गई थी। गुरु ने पूछा—तुमको इसका कैसे पता? आपकी कृपा से। सिर झुकाकर पुष्पचूला ने कहा। आचार्य ने तत्क्षण उससे क्षमा मांगी और उसके केवलज्ञान की बात सर्वत्र फैल गई। पुष्पचूल भी अपने प्रजाजनों के साथ अपनी बहिन की वन्दना करने को आया। सती पुष्पचूला की जय के नारों से दिशाएँ गूंज उठीं। वस्तुतः पुष्पचूला नारीजगत की एक अनुपम नारी थी।

卐 卐

श्रावस्ती के महाराज जितशत्रु का प्रिय पुत्र स्कंदककुमार बचपन से ही बड़ा श्रद्धालु और धर्मप्रेमी था। एक समय मित्र-राज्य से वहां के मंत्री पालक कार्यवश श्रावस्ती में महाराज के पास आए हुए थे। राजकार्य के बाद मंत्री ने राजसभा में धर्मचर्चा चलाई और बोले — "स्वर्ग नरक, आत्मा, पुण्य, पाप आदि कुछ भी नहीं हैं। धर्माचार्य की सारी बातें कल्पित एवं ढोंग हैं। स्कन्दककुमार को यह चर्चा पसंद नहीं आयी और उन्होंने मन्त्री के साथ खुला प्रतिवाद किया तथा युक्तिपूर्वक मंत्री के कथन का खण्डन किया।

कुमार स्कन्दक के मुख से आत्मा, परमात्मा, एवं परलोक आदि का सयुक्ति अस्तित्व कथन सुनकर सारे सभासद् प्रसन्न हो उठे तथा राजकुमार की बात को सत्य मानने लगे। पालक का पक्ष किसी को भी पसन्द नहीं आया। फलतः लज्जित होकर पालक वहां से चला गया और मन में राजकुमार से बदला लेने को सोचता गया।

कुछ समय के बाद भगवान् मुनिसुव्रत का श्रावस्ती में पधारना हुआ। राजकुमार स्कन्दक भी नागरजनों के साथ प्रभुवन्दन को गया और उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया। उसने पांच सौ राजकुमारों के साथ भगवान् के चरणों में संयम धारण कर लिया और विनयपूर्वक ज्ञानाचरण की शिक्षा लेकर निर्मलभाव से तप करने लगा।

एक दिन स्कन्दक मुनि ने भगवान् से जन-पद में विहार करने की अनुमति मांगी। प्रभु ने कहा — स्कन्दक ! विहार में अनिष्ट की संभावना

है। तुम्हारे पांच सौ शिष्य आराधक हो जाएंगे पर तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। स्कन्दक मुनि ने भावनावेश मे प्रभु की बात का ध्यान नही करते हुए दण्डकारण्य की ओर विहार कर दिया।

पाच सौ मुनियों के संग ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्कन्दक मुनि दण्डकारण्य पहुंच गए। नगरी के बाहर उद्यान मे आचार्य के विराजने की खबर से राजा और मत्री पालक मुनि को दर्शन को गए। मुनि को देखते ही मत्री का वैर जाग उठा। उसने बाग के चारों ओर अस्त्र-शस्त्र गड़वा दिए और अवसर देखकर राजा को मुनि के षड्यन्त्र की बात कह सुनाई। राजा ने गुप्त जांच के द्वारा जान लिया कि मत्री की बात सही है। उसने मत्री को खुली आज्ञा प्रदान करदी कि इन षड्यंत्री साधुओं को मनचाहा दण्ड दे। अब क्या था — "बन्दर को विच्छू डंसा और मदिरा पिलादी" वाली कहावत सही हो गई। मंत्री ने क्रोधावेश में आज्ञा दी कि बगीचे के पास घाणी लगा कर एक एक साधु को उसमें पील दिया जाय।

पापी दंडपाल ने जब आचार्य सहित साधुओ को राजा का आदेश सुनाया तो वे अवाक् हो गए। साधुओ ने अपना परीक्षा-काल समझ कर गुरु के समक्ष आलोचना प्रतिक्रमण कर शुद्धि करली और अनशन के साथ अन्तिम क्षण तक समाधिभाव का साधन कर केवल मिला लिया। अन्त में छोटे साधु की बारी आयी तो आचार्य ने कहा — पहले मुझे पील दो, इस बच्चे को मेरे सामने मत पीलो, क्योंकि इससे मुझे बड़ा दुःख होगा। दण्डपाल ने इस पर कुछ ध्यान नही दिया और छोटे मुनि को आचार्य के सामने ही पील दिया।

आचार्य स्कन्दक के शिष्यों ने भावशुद्धि के कारण घानी में पीले जाकर भी समभाव नही छोड़ा और अल्पकाल मे ही परम पद मिला लिया। आचार्य स्कन्दक भाव की क्लिष्टता मे विराधक हो गए। स्कन्दकशिष्यों का आराधक पद भाव शुद्धि का ही ज्वलन्त उदाहरण है।

卐 卐

दर्दुर

किसी समय राजगृही नगरी में भगवान् महावीर के समवसरण में दर्दुर नाम का एक महर्धिक देव आया और भगवान् को वन्दन कर वापिस चला गया। गौतम ने उसके पूर्वजन्म का परिचय पूछा तो श्रमण भगवान् महावीर ने कहा – यह दर्दुरदेव राजगृही के मणिकार सेठ का जीव है। श्रावक धर्म की विराधना कर अन्त समय में कुष्ठादि रोगों से पीड़ित नन्दा वावड़ी में मूर्छित होकर काल प्राप्त किया इसलिए उसी वावड़ी मेंढक रूप से जन्म लिया।

कुछ समय के बाद जब आगत लोगों से नन्द मणिहार की प्रशंसा और महिमा सुनने लगा तो उसके मन में संकल्प उत्पन्न हुआ और चिन्तन करते हुए उसने जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति करली। उसने सोचा कि मैंने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावक धर्म ग्रहण किया था पर साधुदर्शन के अभाव से मिथ्यात्व को प्राप्त कर आर्तध्यानवश मेंढ़क योनि में आ गया हूं। जीवनसुधार के लिए मुझे पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप धर्म की आराधना करते हुए निरन्तर बेले की तपस्या और पारणा में पुष्करणी के किनारे प्रासुक स्नान आदि के जल एवं मिट्टी से जीवननिर्वाह करना चाहिए।

मेंढ़क ने प्रतिज्ञा के अनुसार बावड़ी में भी साधनामय जीवन बिताना चालू कर दिया संयोग से एक समय भगवान् महावीर नगरी के उद्यान में पधारे। उनके वन्दन को जाते हुए बहुत से लोगों ने बावड़ी पर पानी लेते

हुए बातचीत के प्रसंग में कहा—देर करना ठीक नहीं। जल्द से जल्द प्रभु दर्शन के लिए चलना चाहिए।

दर्दुर के मन में भी भावना जगी कि मुझे भी प्रभु के चरणों में वन्दना करने को जाना चाहिए। वह धीरे २ बावड़ी से निकलकर राज-मार्ग पर आया और मंडूक गति से उद्यान की ओर बढ़ चला। इधर महाराज श्रेणिक की सवारी भी उसी पथ पर होकर चली। उस विशाल जन-समूह के बीच में बेचारे क्षुद्र मेंढक का क्या पता? वह एक घोड़े की खुर के नीचे आ गया और कुचला गया। शरीर से असमर्थ होकर भी वह मनोबल से समर्थ था। अतएव सड़क के एक किनारे होकर प्रभु के चरणों में आत्मनिवेदन करते बोला—अर्हन्तादि भगवन्तों को नमस्कार हो तथा सिद्धि करने वाले भगवान् महावीर को भी। इस प्रकार उसने प्रभु की साक्षी से सभी प्रकार के पापों का परित्याग कर दिया और जीवन भर के लिए सम्पूर्ण आहार का त्याग कर बिना किसी पर राग रोष लाए समाधि-पूर्वक जीवन-लीला समाप्त की।

गौतम! दर्दुर जन्म की उसी साधना का यह फल है कि यह इतनी बड़ी ऋद्धि का स्वामी बना है और एक जन्म कर महाविदेह क्षेत्र से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त पद का अधिकारी बनेगा।

● ●

उज्जयिनी नगरी में चण्डरुद्राचार्य नाम के एक आचार्य अपने साधु-मंडल के साथ विराज रहे थे। आचार्य का स्वभाव यथानाम तथा गुण वाला था। वे बात २ में क्रोध से तमतमा उठते थे। फलतः प्रतिकूल वातावरण से अपनी आत्मा को बचाने के लिए वे जनशून्य स्थान में निवास करते हुए स्वाध्यायाध्ययन में निमग्न रहने लगे।

एक बार किसी सेठ का पुत्र विवाह कर अपने शाले के साथ आचार्य के दर्शन को आया। तरुण सेठ का शाला हंसोड़ और मजाकिया था, और वह यह भी जानता था कि आचार्य बात २ में क्रुद्ध हो जाते हैं। अतः उसने अपने बहनोई की हंसी करते हुए कहा कि महाराज! ये मेरे जीजाजी बड़े ज्ञानी हैं तथा वैरागी भी। आप जैसे गुरु के बिल्कुल अनुकूल शिष्य होने योग्य हैं। ये ना भी कहें तब भी आप इन्हें दीक्षा जरूर देवें। आप जैसा गुरु इनको मिलना कठिन है और आप भी मुश्किल से ऐसे शिष्यरत्न की प्राप्ति कर सकेंगे।

उसके बारम्बार कहने से आचार्य का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने क्रोधावेश में आकर उसके बाल नोच लिये। सेठ-पुत्र ने आचार्य को क्रुद्ध बना देख कर कहा कि महाराज! शान्ति से लोच कर अब मुझे दीक्षित बना लीजिए। अगर मेरे शाले ने हँसी की और आप उसको सत्य समझ गए तो अब यह सत्य ही रहना चाहिए। शाला अवाक् देखता रह गया और आचार्य ने लोच करके उसको दीक्षित बना लिया। उसका शाला क्रोध से भरा हुआ घर की ओर चल दिया।

कुछ क्षण के पश्चात् नवदीक्षित बोला कि गुरुदेव ! आपने तो मुझे संसार-सागर से उबार लिया किन्तु अब यहा आपको परिषह सहन करना पडेगा। क्योकि मैंने अभी २ शादी की थी और आपने मुझे शिष्य बना लिया। निश्चय इस बात से मेरे सासारिक घर वाले आप पर नाराज होगे। मेरा यह शाला घर वालों को ज्यो ही यह सूचित करेगा फिर तो वे सब क्रोध से जलते हुए यहा पहुँच कर नही करने लायक काम भी करने पर उतारू हो जाएँगे। इसलिए शीघ्र यहा से विहार कर देने में ही कल्याण है।

यह सुनकर गुरुदेव का क्रोध ठडा पड़ गया और बोले कि बात तो ठीक है किन्तु सध्या का समय आ गया, अभी विहार कैसे होगा ? मगर नवदीक्षित की प्रेरणा और भयाशका से गुरुजी को हारकर विहार कर देना पड़ा। बुढापे के कारण चाह कर भी चलने मे आचार्य असमर्थ थे। नवदीक्षित ने जब उनकी यह दशा देखी तो वह उन्हे कन्धे पर बिठा कर चल पडा। उसे पीछे का भय लग रहा था कि कही घर के परिजन न आ जाएँ।

रात का समय हो गया। अन्धेरे मे उसके पैर इधर-उधर पटने लगे। वह जल्दी-जल्दी चलना चाहता था। इन कारणों से आचार्य को कन्धे पर भी बडा कष्ट हो रहा था। जिससे उनके भीतर भय से सोया क्रोध धीरे-धीरे सिर उठाने लगा। उन्होने नवदीक्षित से कहा—अरे पापी ! तेरे कारण ही मुझको यह कष्ट उठाना पड़ रहा है। इस तरह कहते २ उन्होने ऊपर से उसको ताड़ना भी शुरु की। नवदीक्षित थोड़ा भी व्याकुल नही हुआ और शान्तभाव से सब कुछ सहन करता रहा।

वह मार से जितना दुःखी नही होता उससे भी अधिक दुःख उसको इसलिए हो रहा था कि वस्तुतः आचार्य को मेरे ही कारण यह घोर दुःख उठाना पड़ रहा है। अगर मैं इनके पास नही आता और हसी-मजाक की बात वहा नही चलती तो निश्चय यह प्रसंग उपस्थित नहीं होता। गुरुदेव जो कुछ भी कह रहे हैं, वह सोलह आना सत्य है। किस तरह

इन्हें शान्ति मिलेगी और कैसे मैं इस दोष से मुक्त हो सकूंगा आदि बातो को विचारते हुए वह क्षपक श्रेणी चढ़कर एवं घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान पाने में समर्थ हो गया ।

केवलज्ञान पाते ही वह बिल्कुल सीधे चलने लगा । वह इस बात का ध्यान रखता था कि गुरुदेव को थोड़ा भी कष्ट न हो । चलने से अधिक चिन्ता अब उसे कन्धे पर बैठे गुरु के कष्ट न पहुंचने की होने लगी ।

आचार्य ने कहा—भार सार है । शिष्य बोला—यह आपका उपकार है । आचार्य बोले—क्या कोई ज्ञान प्राप्त हुआ है ? नवदीक्षित ने कहा—हां । तो क्या प्रतिपाति या अप्रतिपाति ? शिष्य ने कहा—अप्रतिपाति । अब तो आचार्य जल्दी ही उसके कन्धे से उतर पड़े और पश्चात्ताप करने लगे कि मेरे द्वारा केवली की आसातना हुई । इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए आचार्य का ध्यान भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया और क्षणों में वे भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिए । यों विनीत शिष्य दोनों की आत्मा के कल्याण का कारण बन गया ।

● ●

सती नर्मदासुन्दरी

सतीममंडल में नर्मदा सुन्दरी की साधना एक विलक्षण साधना है। व्यवहार में, शीलवती नारियों को अपने धर्म की रक्षा के लिए उसकी कथा से नया प्रकाश मिल सकता है।

वर्द्धमानपुर में वृषभसेन एक ख्यातिप्राप्त सार्थवाह थे। उनकी पत्नी का नाम वीरमती था। उनके वीरसेन और सहदेव नामक दो पुत्र और एक कन्या थी जिसका नाम ऋषिदत्ता था।

सेठ और सेठानी दोनों धर्मनिष्ठ थे, अतएव स्वाभाविक ही था कि वे अपनी सन्तति को सुसंस्कारी और नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा से शिक्षित बनाते। विशेषतः ऋषिदत्ता के चित्त में प्रारम्भ से ही प्रबल धर्म-प्रेम था। घर में या बाहर जब भी उसे अवसर मिलता, वह धर्म-चर्चा करती और सत्पुरुषों की पुण्यकथा किया करती।

अनुक्रम से ऋषिदत्ता विवाह के योग्य हुई, मगर नगर में कोई सम्यग्दृष्टि तरुण नहीं मिला जो उसके अनुरूप हो। माता-पिता चिन्तित रहने लगे किन्तु विधर्मी के साथ सम्बन्ध करने का उन्होंने विचार तक न किया। वे जानते थे कि जहां धार्मिक आचार-विचार में असमानता होती है, वहां दाम्पत्य जीवन सुखद नहीं रह सकता।

मनुष्य क्या सोचता है और हो क्या जाता है! संयोगवश रूपचन्द्र नगर का एक तरुण व्यवसायी रुद्रदत्त वर्धमानपुर में आया। वहां के कुबेरदत्त नामक वणिक् के साथ उसकी मैत्री हो गई। कुबेरदत्त ने उसे

निमंत्रित किया। भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् रुद्रदत्त एक गवाक्ष में बैठा था कि अचानक उसको दृष्टि ऋषिदत्ता पर पड़ गई। अनुरागवश वह मूर्छित हो गया। मित्र ने सचेत किया। मूर्छित होने का कारण पूछने पर रुद्रदत्त ने उसे सब हाल सुनाया और पूछा: वह किसकी कन्या है? उसे देखे बिना मुझे चैन नहीं। उसका घर बतलाइए।

कुबेरदत्त ने कहा: तुम्हारी यह कामना अनुचित है। वृषभसेन सेठ पक्का सम्यग्दृष्टि है। वह विधर्मी को कन्या नहीं देगा।

रुद्रदत्त अपने मित्र की बात सुनकर बोला तो कुछ नहीं, पर उसने ऋषिदत्ता को कपट करके भी प्राप्त करने का संकल्प कर लिया। मन ही मन पूरा षड्यन्त्र रच लिया। तदनुसार ऊपरी मन से वह जैन मुनि के पास जाने लगा। वह नकली सम्यक्त्वी बन गया और फिर गृहस्थ के व्रतों का धारक भी।

एक दिन वह वृषभसेन के घर जा पहुँचा। वृषभसेन ने यथोचित सत्कार करके उससे पूछा: आप कौन हैं और कहां से आए हैं? रुद्रदत्त ने अपनी धर्मनिष्ठा का सिक्का जमाने के लिए ज्ञानी की भाषा में कहा: संसार में; चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते आखिर जैन-नगर में चारित्र-भूपति के दर्शन हुए और उनके सद्बोध-मन्त्री ने मुझे बारह व्रत धारण कराये। इधर आपकी प्रशंसा सुनकर दर्शनार्थ चला आया।

सार्थवाह ने समझा: यह पूरा श्रावक है, भव्य जीव है। फिर पूछा: आपने यह तो ज्ञान की बात कही, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से नाम-ठाम भी बतलाइए।

रुद्रदत्त ने अपना परिचय दिया और कहा: व्यवसाय के लिए इस नगर में आया हूं। मुझे मिथ्यादृष्टियों से मिलना-जुलना नहीं सुहाता।

वृषभसेन परमधार्मिक समझ कर उससे घुल-मिल गया। वह उसके कपट-जाल में फँसने लगा। जब सार्थवाह सामायिक पौषध आदि धर्मकृत्य

करता तो वह भी साथ में रहता। प्रश्नोत्तर करता और उत्कट धर्मप्रेम प्रदर्शित करता।

जब रुद्रदत्त को विश्वास हो गया कि वृषभसेन पर मेरी धार्मिकता का पक्का रंग जम गया है तो एक दिन उसने वृषभसेन के पास जाकर कहा : आज्ञा दीजिए, अब मैं घर लौटना चाहता हूँ।

वृषभसेन ने सोचा : ऋषिदत्ता के लिये इससे अच्छा वर मिलना कठिन है। क्यों न इसे सौंप कर निश्चिन्त हो जाऊँ। यह सोच कर उसने परिणय का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। रुद्रदत्त मन ही मन मुस्कराया पर ऊपर से बोला : आप क्या कह रहे हैं ? मैं परदेशी, जान न पहिचान ! कैसे लग्न करेंगे ?

सार्थवाह ने कहा : आप सार्धमिक हैं, इससे बड़ी पहिचान और क्या हो सकती है ! आपको मेरा अनुरोध स्वीकार करना ही होगा।

रुद्रदत्त : तो जो आपकी आज्ञा। आपका दिल दुखा कर जा भी कैसे सकता हूँ !

आखिर विवाह की तैयारियाँ हुईं और यथासमय पाणिग्रहण-समारोह सम्पन्न हो गया।

कुछ समय वृषभसेन के घर रह कर रुद्रदत्त रूपचन्द्र-नगर आ पहुँचा। ऋषिदत्ता साथ ही थी। रुद्रदत्त के पारिवारिक जनों ने दोनों का प्रीतिपूर्ण सत्कार किया। रुद्रदत्त सुख से रहने लगा।

रुद्रदत्त के घर पहुँचने पर वहां के आचार-व्यवहार से ऋषिदत्ता को समझते देरी न लगी कि मेरे पति ने कपट किया है। इस घर में महेश्वर का आचार है। मैं कैसे अपने धर्म को निभाऊँगी ? कुछ भी हो, मैं अपने पवित्र धर्म का परित्याग नहीं करूँगी।

ऋषिदत्ता ने संभल-संभल कर चलना आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् उसे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। नाम रक्खा गया महेश्वरदत्त।

[२]

उधर ऋषिदत्ता के भाई सहदेव की पत्नी सुन्दरी ने गर्भ धारण किया। वह आहार-विहार में नियमित रहती हुई गर्भ की रक्षा करने लगी। उन्हीं दिनों उसे हाथी पर आरूढ़ होकर नर्मदा नदी के किनारे विचरण करने और दीन जनों को दान देने का दोहद उत्पन्न हुआ। सहदेव यह सुनकर प्रसन्न हुआ। दोहदपूर्ति के लिये लक्षणसम्पन्न हाथी मंगवाया गया। उस पर आरूढ़ होकर सुन्दरी नर्मदा के तट पर पहुँची।

नदी के किनारे घूमते-घूमते हाथी को उन्माद आ गया। वह अकस्मात् चिंघाड़ने लगता। महावत अंकुश-प्रहार से उसे वश में करता। मगर उसका उन्माद शान्त नहीं हुआ। वह पेड़ों को उखाड़-उखाड़ कर फैंकने लगा। आखिर ऋषिदत्ता और सहदेव नीचे उतर कर पैदल ही विचरण करने लगे। बाद में ऋषिदत्ता की इच्छा के अनुसार वहां नर्मदा-पुर नगर बसाया गया।

यथासमय सुन्दरी ने सुन्दरी बालिका को जन्म दिया। दोहद के आधार पर उसका नाम नर्मदासुन्दरी रक्खा गया। वह दूज के चांद की तरह बढ़ने लगी। उसके नेत्र निर्भयकारी, रसना अमृतभरी और हृदय निर्मल था। धीरे-धीरे वह यौवन वय में आई।

ऋषिदत्ता को जब नर्मदा सुन्दरी के विषय में जो जानकारी मिली, उससे वह उसे अपनी पुत्रवधू बनाने को लालायित हो गई। शायद उसे यह विचार आया कि एक से दो होकर हम विपरीत परिस्थितियों का अधिक शक्ति से मुकाबिला कर सकेंगी और संभव है इस घर का धार्मिक वातावरण भी बदल जाय। उसने अपने पति के सामने अपनी अभिलाषा प्रकट की। मगर अपनी धूर्त्तता का स्मरण करके रुद्रदत्त वर्धमानपुर जाने का साहस न कर सका। तब उसने अपने पुत्र महेश्वरदत्त को ही तैयार किया। महेश्वरदत्त ने कहा : मैं मामा के घर जाऊँगा और प्रपंच करके उनकी पुत्री नर्मदा को ब्याह लाऊँगा। अपने कुल की यही रीति है।

आखिर महेश्वरदत्त मामा के घर जा पहुँचा। सहदेव ने शिष्टाचार के रूप में उसका स्वागत तो किया, परन्तु हृदय की भड़की हुई आग दवाये न दवी। उसने महेश्वरदत्त से कहा : तुम्हारे पिता ने एक बार पराक्रम किया है। क्या उसकी पुनरावृत्ति करने को तुम आये हो? एक बार ठगाई में आ गए, अब हम ठगे नहीं जाएँगे। एक घर तो डाकिन भी छोड़ती है। क्या तुम्हारे नगर में धूर्त ही धूर्त रहते हैं?

महेश्वरदत्त नीची गर्दन किये कुछ देर सुनता रहा। फिर बोला : मामाजी, बड़े उल्लास से पहली बार में ननिहाल आया और आपने यह स्वागत किया! एक खोटा हो तो क्या सभी खोटे होते हैं? मैंने तो अपनी माता और आपकी बहिन के संसर्ग से जैन-धर्म अंगीकार किया है।

सहदेव यह सुनकर सन्तुष्ट हुआ। उसके गुणों को देखकर प्रसन्न हुआ। एक दिन उसने कहा : वत्स, यह तुम्हारा ही घर है। जो इच्छा हो, मांगो। मौका पाकर महेश्वरदत्त ने कह दिया : आपकी कृपा से किसी वस्तु की कमी नहीं है, पर नर्मदासुन्दरी का पाणिग्रहण मेरे साथ किया जाय, यही मन में है।

सहदेव : भाई, तुम मिथ्यात्वी हो। तुम्हारे साथ नर्मदासुन्दरी का सम्बन्ध कैसे किया जा सकता है?

महेश्वरदत्त : मैंने आपकी बहिन का दूध पिया है, फिर मिथ्यात्वी कैसे रहूँगा?

सहदेव को विश्वास हो गया और नर्मदासुन्दरी का महेश्वरदत्त के साथ विवाह कर दिया गया। महेश्वरदत्त उसे लेकर अपने घर लौट आया। बाद में नर्मदा के समझाने पर वह जिनधर्मी हो गया और सारे परिवार में जिनधर्म की भक्ति होने लगी।

[३]

नर्मदासुन्दरी एक दिन झरोखे में बैठी सखियों के साथ प्रेमालाप कर रही थी। ताम्बूल मुख में था। इसी समय मासखमण की तपस्या

करने वाले एक मुनि पारणा के लिये निकले और सूय के प्रचण्ड आतप से उद्विग्न होकर उस झरोखे के नीचे विश्राम करने को खड़े हो गए। नर्मदा-सुन्दरी ने अनजान में पान की पीक थूकी और वह मुनि के शरीर पर गिरी। मुनि ने ऊपर देख कर कहा : तुझे अपने घर-वर का इतना घमण्ड है! तू पतिवियोगिनी होगी।

नर्मदासुन्दरी ने नीचे देखा तो उसके परिताप की सीमा न रही। वह लज्जित होती हुई मुनि के समक्ष आई। विधिपूर्वक वन्दना करके बोली : मुनिवर! अनजान में अपराध बन गया है। इसके लिए क्षमा-याचना करती हूँ। मैं जिनधर्मी श्राविका हूँ, मुझे शाप न दीजिए। आप क्षमा के सागर हैं, क्षमा कीजिए।

मुनि ने शान्त और गंभीर स्वर में कहा : भवितव्य को कोई टाल नहीं सकता। भवितव्य ही मेरे मुंह से निकल गया है। धैर्य धारण करके कर्मफल भोग लेना उचित है। नर्मदा खेद से विह्वल हो गई। मुनि आगे चले गए।

कुछ समय पश्चात् महेश्वरदत्त ने व्यापार के निमित्त विदेश जाने का विचार किया। नर्मदासुन्दरी भी साथ जाने का आग्रह करने लगी। उसने कहा : छाया काया के बिना नहीं रह सकती। आपके बिना एक घड़ी भी मेरे लिए छह महीने के बराबर है। इसके अतिरिक्त मुनि ने पतिवियोग की बात कही है, इस कारण भी मैं आपसे अलग नहीं रह सकती। साथ ही चलूँगी।

महेश्वरदत्त को नर्मदासुन्दरी के आग्रह के सामने झुकना पड़ा। यथासमय जहाज द्वारा वे समुद्र-यात्रा पर चल पड़े। जहाज के झरोखे में बैठे दोनों शरद् के चन्द्रमा की छटा निहार रहे थे कि एक ओर से वीणा की झंकार सुनाई दी। नर्मदा ने वीणावादन के कौशल की प्रशंसा की। इससे महेश्वरदत्त के चित्त में नर्मदा के सतीत्व के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो गया।

चलते-चलते जहाज राक्षस द्वीप के किनारे लगा। लोग ईन्धन-पानी की चिन्ता में लगे और महेश्वरदत्त नर्मदासुन्दरी से पिण्ड छुड़ाने की चिन्ता में। वन-विहार के बहाने वह उसे एकान्त मे ले गया। नर्मदा को नींद आ गई तो महेश्वरदत्त सोचने लगा: क्या शस्त्र से इसका अन्त कर दूँ? किन्तु नारी-हत्या का पाप क्यों सिर पर लूँ। इसे यही छोड़ कर चल देना अच्छा।

नर्मदासुन्दरी निद्रा में मग्न थी और महेश्वरदत्त भाग कर जहाज के निकट आ पहुँचा। आते ही उसने पिशाच के उपद्रव का भय दिखला कर शीघ्र ही जहाज रवाना करवा दिया। यवनद्वीप में जाकर उसने व्यापार किया और कुछ दिनों के बाद वापिस लौट पड़ा।

मार्ग में हवा का प्रतिकूल रुख देख नाविक चिन्तित हुए। इतने में महेश्वरदत्त नौका से उतर कर गिरिवर पर चढ़ गया। वहां उसे दो नगाड़े दिखाई दिए। उसने डंडी उठा कर नगाड़े पर चोट मारी। तुरन्त पहाड़ गरज उठा और गुफा में से भारंड पक्षी के उड़ने से जो तेज हवा चली, उसके आघात से सागर हिल गया। जहाज तेजी के साथ चल पड़ा। महेश्वरदत्त जहाज को न पकड़ सका। जहाज रूपचन्द्रपुर जा पहुँचा।

महेश्वरदत्त को जब जहाज दिखाई न दिया तो वह भूखा-प्यासा वन में भटकने लगा। रात्रि हुई तो वृक्ष की एक कोटर में सो गया। अचानक वहां की वनदेवी कांचनद्वीप देखने को उसी वृक्ष पर बैठ कर उड़ी। महेश्वरदत्त की नींद खुली और ज्यों ही वह बाहर झांकने लगा कि समुद्र में गिर गया। गिरते ही एक मच्छ ने उसे निगल लिया। मच्छ कुछ दिन बाद रूपचन्द्रनगर के निकट सागर में पहुँचा। मच्छीमार ने उसे पकड़ लिया और जब विदारण किया तो महेश्वरदत्त उसके पेट से जीवित निकल आया। उसे पाकर माता-पिता आदि को अपार हर्ष हुआ। वह अपने परिवार के साथ रहने लगा।

[४]

उधर नर्मदासुन्दरी की नींद उड़ी। उसने इधर-उधर देखा, पर महेश्वरदत्त कहीं दिखाई न दिया। पुकारा, मगर सुनने वाला कोई न था। अचानक आ पड़ी इस विपदा से वह अधीर हो गई। आँखों से आँसू बरसने लगे। मुनि के शाप का स्मरण हो आया। किसी प्रकार हृदय को थाम कर वह भविष्य का विचार करने लगी। रात्रि में गुच्छ-लताओं के बीच रही और सो न सकी। प्रातः समुद्र के किनारे की ओर चली। संयोग की बात कि वहां व्यापार-यात्रा पर जाते हुए उसके पिता से उसकी भेंट हो गई। नर्मदा ने सब हाल बतलाया। पिता ने भी सान्त्वना दी और कहा : बेटी, धर्म के प्रसाद से मंगल होगा। जिनराज की भक्ति से कर्म कटेंगे। आर्त्तध्यान छोड़ो और भगवान् का भजन करो।

नर्मदासुन्दरी ने पिता का आश्रय पाकर सन्तोष की सांस ली। वह व्यापार के लिये सिंहलद्वीप जा रहे थे, मगर प्रतिकूल पवन के झकोरों से जहाज बब्बरकूला जा पहुँचा। सागर के तट पर डेरे तान कर सब ने भोजन किया। तदनन्तर सेठ बब्बरभूप से मिलने और व्यापार का रुख देखने गया। अनुकूल बाजार पाकर वहीं रुक गया। बब्बर राजा से उसकी प्रीति हो गई और वह प्रतिदिन वहां जाने लगा। नर्मदा अपने डेरे पर ही रहती और अधिकांश समय प्रभु के भजन में व्यतीत करती थी।

वहाँ हरिणी नामक एक गणिका थी। राजा ने प्रसन्नता में एक दिन उससे कुछ मांगने को कहा। गणिका बोली : महाराज, आप प्रसन्न हैं तो जो सार्थवाह आपके यहां आता है, वह मुझे १००८ मोहरें दे और मेरे भवन में आवे। न माने तो मैं उसका अपमान करूँ। राजा ने गणिका की मांग स्वीकार कर ली।

गणिका ने अपनी दासी सार्थवाह के पास भेजी। सारी बातें सुन कर सार्थवाह ने कहा : मोहरें देने से तो मैं मना नहीं करता, मगर मैं परस्त्रीगमन का त्यागी हूं। उसके भवन में नहीं जाऊँगा। दासी ने लौटकर गणिका को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

गणिका ने कहा : तू फिर जा। कहना : मेरे घर न आओगे तो मैं मोहरें कैसे लूंगी ? क्या घर पर आने मात्र से ही पाप लग जाता है ? एक बार अवश्य आयें।

सार्थवाह पशोपेश में पड़ गया, मगर पिण्ड छुड़ाने के लिए मोहरें लेकर चला। वेश्या ने बहुत हाव-भाव प्रदर्शित किये, किन्तु सेठ ने कहा : मैं परदारा का त्यागी हूं, ये हाव-भाव रहने दो। मोहरें तैयार हैं, इन्हें गिन लो।

दासी ने नर्मदासुन्दरी को डेरे पर देख लिया था। उसने गणिका को उसके अनुपम सौन्दर्य के विषय में बतलाया। गणिका ने नर्मदा को छलने के लिए बात की बात में सार्थवाह की अंगूठी ले ली और उसके संकेत से दासी जाकर और यह कह कर कि तुम्हारे पिता बुला रहे हैं, नर्मदासुन्दरी को गणिका के घर ले आई। सार्थवाह को इस षड्यन्त्र का तनिक भी आभास न हो सका।

उधर सार्थवाह जब डेरे पर लौट कर आया तो नर्मदा को न पाकर अत्यन्त दुखी हुआ। बब्बरकुल में पता लगाया, मगर वहाँ भी पता न चला। सार्थवाह हताश हो गया। आखिर अपना व्यापार समेट कर वह वहां से चल दिया और भृगुकच्छ पहुँचा। वहाँ जिनदास व्यवहारी उसका मित्र था। सार्थवाह ने नर्मदा-हरण का वृत्तान्त उसे सुनाया और कहा : बब्बरकुल जाओ तो उसका पता लगाना मत भूलना।

जिनदास ने कहा : मेरी भी प्रतिज्ञा है कि नर्मदा का पता लगा कर आऊँगा तभी आपसे मुलाकात करूंगा।

कुछ समय बाद जिनदास व्यापार के निमित्त बब्बरकुल पहुंचा। वहाँ उसने व्यापार के साथ नर्मदासुन्दरी का पता भी लगाया, मगर जब कहीं पता न लगा तो हरिणी के यहाँ खोजने की सोची।

उधर जब सार्थवाह बब्बरकुल से रवाना हो गया तो हरिणी ने नर्मदासुन्दरी से मुलाकात की। प्रेमपूर्वक आलिंगन किया। सिंहासन पर

बिठलाया और कहा : बेटी, तेरे पिता तुझे मेरे यहां बेच गए हैं, पर तुझे इसकी खबर नहीं है। संसार में स्वार्थ ही सब से ऊँचा है। स्वार्थ के लिए ही सब सम्बन्ध हैं। पिता को ऐसा करना नहीं चाहिए था, मगर गनीमत हुई उसने मेरे यहां बेचा। मैं तुझे अपनी पुत्री समझती हूं। तू इस घर की ठकुरानी है, प्राणों के समान प्यारी है। अपने यहां किसी सुख-भोग की कमी नहीं है। नगर के नवयुवा तेरा सत्कार करेंगे, तेरे तलुवे चाटेंगे। किसी प्रकार की चिन्ता न करना।

गणिका की बात सुन कर नर्मदा ने सोचा : मैं घोर संकट में पड़ गई हूँ, मगर यही मेरी धर्म-परीक्षा का अवसर है। प्राण देकर भी शीलधर्म की रक्षा करनी होगी। मेरे पिता और मुझे वेश्या के हाथ बेचें ! असंभव, एकदम असंभव ! यह सब इसकी चाल है।

नर्मदा को उदास देख हारिणी ने पुनः कहा : बेटी, प्रसन्न हो। तेरी तरुण वय है। दिल खोल कर राग-रंग कर और अपने जीवन को सफल बना।

नर्मदा से अब न रहा गया। बोली : बाईजी, बोलना बन्द करो। मैं सार्थवाह की पुत्री हूँ और मैंने धर्म को समझा है। [illegible] स्वयं नरक के पथ पर जा रही हो और मुझे भी घसीट के ले जाना चाहती हो ?

गणिका : बेटी, उत्तेजित होने से काम बनने वाला नहीं। तू मेरे अधीन है। मेरी आज्ञा माननी ही होगी।

नर्मदा फिर सोच-विचार में डूब गई : पहले पति ने त्यागा, पिताजी भी दूर हो गए और अब इस आग में आ पड़ी ! हाय, मैंने ऐसे क्या अशुभ कर्म किये हैं !

गणिका ने फिर कहा : देखो, सीधी तरह मान जाओ, वर्ना अन्धेरी कोठरी में बन्द होकर कोड़ों की मार खानी पड़ेगी।

इतना कह कर गणिका ने उसे अपने कमरे में जाने और सोच-विचार कर लेने का आदेश दिया। नर्मदा अपने कमरे में आ गई, मगर उसे नया

कुछ सोचना नहीं था। उसका आदि से अन्त तक एक ही संकल्प था। शीलरक्षा !

मगर अदृष्ट की करामात निराली होती है। हारिणी के पेट में अचानक शूल उठा और देखते ही देखते उसका प्राणान्त हो गया।

राजा के पास यह समाचार पहुँचा तो उसने वेश्या की लावारिश सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए अपने आदमी भेज दिये। उन्होंने वहां नर्मदासुन्दरी को देखा और वापिस लौट कर राजा को खबर दी। उन्होंने कहा : हारिणी के घर में एक सुन्दरी है जो वहां की स्वामिनी दिखती है। इसी कारण हमने सम्पत्ति को हाथ नहीं लगाया। अब जो आदेश हो, पालन किया जाय।

राजा ने मंत्री से कहा : आप जाकर देखिए वह सुन्दरी कौन है ? उसे अपने यहां ले आइए।

मंत्री गया। नर्मदा को देख कर वह चकित रह गया। सोचा : राजा इसे पाकर धन्य हो जाएगा। उसने नर्मदा से कहा : देवी, तुम अत्यन्त भाग्यशालिनी हो कि बब्बरकुल-स्वामी तुम्हें चाहते हैं। चलो, हारिणी की समस्त सम्पत्ति वह तुम्हें प्रदान करेंगे।

. नर्मदासुन्दरी ने सोचा : अब तक धर्म मेरा सहायक रहा है। किन्तु इस वार जबर्दस्त से पाला पड़ा है। अवश्य ही धर्म के प्रभाव से मेरे शील की रक्षा होगी। जिसने प्राणों की ममता तज दी हो उसके लिए शील की रक्षा करना कठिन नहीं हो सकता।

आखिर विना मन भी नर्मदासुन्दरी को रथ पर विठला कर मंत्री चल पड़ा। वह नमस्कार मन्त्र का जप करती हुई बैठी थी। अचानक उसके मन में एक विचार उत्पन्न हुआ, जिससे उसे कुछ आशा बंधी। वह चहुटे पर पहुँची और एकदम पास के खाल में कूद पड़ी। शरीर को कीचड़ से लिप्त कर लिया। वस्त्र फाड़ डाले। आक्रन्दन करने और लोगों को डराने लगी। कभी रोती, कभी अट्टहास करती।

मन्त्री ने राजा को यह समाचार कहे। उसने घोषणा करवाई : जो नर्मदा को स्वस्थ कर देगा उसे एक लाख दीनारें पुरस्कार में दी जाएँगी।

एक लोभी ब्राह्मण आगे आया। नर्मदा को एक कोठे में ले जा कर वह धूप खेने लगा और मन्त्र-पाठ करने लगा। सती ने सोचा : बेचारा व्यर्थ कोशिश कर रहा है। वह सिर धुनती और दांत पीसती हुई ब्राह्मण पर झपटी। ब्राह्मण जान लेकर भागा और नर्मदा भी बाहर आ गई।

बाहर आकर वह जिनगुणगान करने लगी। अकस्मात् जिनदास उधर से निकला। जिनस्तुति सुनकर उसे कुतूहल होना स्वाभाविक था। उसने लोगों को एक ओर हटा कर सुन्दरी से कहा : बाई, मेरा नाम जिनदास है। तुम श्रावककुल की पुत्री जान पड़ती हो। सच्ची बात बतलाओ।

नर्मदा ने धीरे से कहा : फिर कभी पूछना। यह वेला पूछने की नहीं है।

जिनदास बराबर इसी टोह में रहा कि इसका वास्तविक परिचय प्राप्त किया जाय। राजा के समस्त प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। नर्मदा किसी से ठीक नहीं हुई। कौमुदी-महोत्सव का समय आया। लोग उस महोत्सव में मगन हो गए और वनविहार करने लगे। उधर नर्मदा एक धर्मस्थान में जाकर भगवान् की स्तुति करने लगी। जिनदास भी पीछे से पहुँचा। अवसर देख कर नर्मदा ने उसको अपना परिचय दिया।

जिनदास हर्षित होकर बोला : पुत्री, मैं जिनदास श्रावक हूं। तुम्हारे पिता मेरे परमस्नेही हैं। भृगुकच्छ में उन्होंने तुम्हें खोजने की बात कही थी। तुम अब चिन्ता न करना। मैं तुम्हें पिता के पास अवश्य पहुँचा दूंगा।' इस प्रकार नर्मदा को आश्वस्त करके जिनदास अपने डेरे पर आया। उसने सेवक को यान तैयार कर रखने का आदेश दे दिया।

जिनदास की रवानगी की बात सुन कर राजा ने उसे बुलाया और कहा : एक पगली लड़की यहां गली गली में घूमती फिरती है। बड़ी विवेकहीन है। उसे अपने जहाज पर लेते जाओ और कहीं छोड़ देना।

जिनदास का मार्ग साफ हो गया। उसे मनचाही मुराद मिल गई। उसने कहा : जो आज्ञा महाराज की।

जिनदास राजा से विदाई लेकर डेरे पर आया और फिर नर्मदा के पास जाकर उसे भी ले आया। जहाज रवाना हुआ। जहाज के रवाना होते ही नर्मदासुन्दरी अपने असली रूप में प्रकट हो गई। नर्मदापुर पहुँच कर जिनदास ने उत्सव के साथ उसे माता-पिता के पास पहुँचाया। माता-पिता आदि से मिल कर वह अपना सारा दुःख भूल गई। उसके नेत्रों से हर्ष के आंसू बहने लगे।

जिनदास अपने घर चला गया। नर्मदा सुखपूर्वक पिता के पास रहने लगी। साधु की अवज्ञा करने से उसे दुःख भोगना पड़ा पर शील के प्रभाव से उसके समस्त दुःखों का अन्त हो गया। पिता ने एक दिन नर्मदासुन्दरी से पूछा : तुम्हारे पति को बुलवा दूँ? सती मौन रही। पिछला घटनाचक्र उसके मस्तिष्क में तेजी के साथ घूम गया। उसका हृदय मर्माहत हो उठा। पिता भी आगे कुछ न बोला।

[५]

कुछ समय पश्चात् नगर में मुनिराज का पदार्पण हुआ। संसार की अनित्यता प्रदर्शित करते हुए उन्होंने सम्यक्त्व की महिमा बतलाई। नर्मदा के पिता ने विनयपूर्वक प्रश्न किया : भगवन्, मेरी पुत्री को इतना कष्ट क्यों भुगतना पड़ा? पतिवियोगिनी क्यों होना पड़ा?

मुनि बोले : तुम्हारी पुत्री सती है, परन्तु पूर्वभव में उपार्जित अशुभ कर्म के उदय से इसे दुःख भोगना पड़ा। जो इस प्रकार है :

भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत है जो पचास योजन ऊँचा है। उसके शिखर से नर्मदा नदी निकली है। उसकी अधिष्ठात्री नर्मदा देवी है। एक दिन नदी-तट पर एक मुनि खड़े ध्यान कर रहे थे। उन्हें देख कर देवी क्रुद्ध हुई। डराने के लिए शेर-बाघ आदि के रूप धारण किए। हाथी का रूप धारण करके आकाश में उछाला। पर मुनि का ध्यान असंदिग्ध

रहा। यह देख कर देवी को विस्मय हुआ। उसने पूछा : तुम कौन हो ? तब ध्यान समाप्त कर मुनि ने कहा : हम जिनेन्द्र के साधु हैं। हम किसी पर क्रोध नहीं करते। नर्मदा प्रसन्न हुई। मुनि ने उसे उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में देवी ने प्रश्न किया : भगवन्, मुनि की अवज्ञा करने का क्या फल होता है ?

मुनि ने उत्तर दिया : साधु का पराभव करने से प्राणी निर्धन और निर्गुण होता है। उसे प्रिय का वियोग सहना पड़ता है।

सुनकर नर्मदा डरी। वही देवी मनुष्यभव पाकर तुम्हारी पुत्री हुई है। पूर्वकर्म के उदय से इसे पति का वियोग सहन करना पड़ा। नर्मदा यह वृत्तान्त सुन कर मूर्छित हो गई। होश में आने पर उसने अपने पिता से संयम अंगीकार करने की अनुमति मांगी। पिता ने संयम की दुष्करता बतलाई। तब नर्मदा बोली : पिताजी, बालक डराया रह जाता है, परन्तु संयम के रसिक पुरुष वचनमात्र से कैसे डर सकते हैं ?

आखिर नर्मदा को अनुमति प्राप्त हो गई। दीक्षा-महोत्सव मनाया गया। दीक्षा देने से पूर्व गुरु आर्य सुहस्ती ने उससे कहा : संयम का पथ कठिन है। तेरा मन स्थिर है या नहीं ? जो न पाल सके तो घर में ही रह कर धर्म की साधना कर।

नर्मदासुन्दरी ने विनयपूर्वक निवेदन किया : गुरुदेव, आप मुझे डराइए नहीं। आपको तो मेरा बल बढ़ाना ही उचित है। मैंने कष्ट सहन किए हैं। सहने का अभ्यास हो चुका है। भावपूर्वक ही आपके चरणों में आई हूँ। कृपा करके संयम प्रदान कर कृतार्थ कीजिए।

नर्मदासुन्दरी ने आभूषणादि त्याग कर संयम ग्रहण किया। साध्वी बनने के बाद वह ज्ञान-ध्यान में निरत रहने लगी। फलस्वरूप अवधि-ज्ञान प्राप्त किया और प्रवर्त्तिनी-पद से विभूषित हो गई।

विचरण करती-करती प्रवर्त्तिनी नर्मदासुन्दरी एक बार रूपचन्द्रनगर में पधारीं। भव्यजन देशना श्रवण करने आये। सती ने बन्धतत्त्व का स्वरूप समझाया और उसे स्पष्ट करने के लिए धनवती का उदाहरण दिया, जो इस प्रकार था :

श्रावस्ती नगरी में पुण्यपाल नामक एक व्यवहारी था, जिसकी पत्नी का नाम धनवती था। पुण्यपाल एक बार विदेश जाने लगा तो उसने पत्नी और परिवार की देखरेख करने का उत्तरदायित्व अपने एक मित्र को सौंपा। वह मित्र थोड़े दिनों बाद धनवती को चाहने लगा। धनवती ने उसे फटकार दिया। उसने द्वेषवश धनवती को शाकिनी कह कर बदनाम कर दिया। इस कारण नगर में उसका घूमना-फिरना कठिन हो गया। वह अपने पितृगृह चली गई और भाई के पास रहने लगी। मगर दुर्भाग्य की बात कि वहां एक दास उसे चाहने लगा। सती ने उसको भी फटकारा। तब नाराज होकर उसने बालक को मार डाला और कह दिया धनवती शाकिनी है, इसने बालक को मारा है।

श्रावस्ती के लोगों ने उसे नगर से निकाल दिया। वन में जाकर उसने एक वटवृक्ष के नीचे विश्राम किया। वट पर गुहड़ पक्षी अपने बाल-बच्चों के साथ निवास करता था। एक बार बच्चों के पूछने पर गुहड़ ने बींट के विषय में बतलाया कि इससे कोढ़ रोग चला जाता है।

धनवती ने गुण जान कर बींट इकट्ठी कर ली। अब उसने पुरुष का वेष धारण करके नगर में प्रवेश किया और इलाज करना शुरु कर दिया। थोड़े ही दिनों में उसकी कीर्ति फैल गई। उसने आलीशान भवन बनवा लिया।

कुछ दिन बाद धनवती का पति परदेश से आया। पत्नी को घर पर न पा अपने मित्र से पूछा। वह सती को कलंकित करने के पाप से कोढ़ी हो गया था। उसकी बातों से वह समझ गया कि मित्र में कुटिलता है।

पुण्यपाल ने कुष्ठ-वैद्य की चर्चा सुनी तो वह अपने मित्र को साथ लेकर उसके पास गया। अचानक वह दास भी कोढ़ से पीड़ित वहां आ पहुँचा। सती अपने पति को देख कर अत्यन्त हर्षित हुई, मगर उसने अपना भेद न खोला।

पुण्यपाल ने वैद्य से कहा: महाराज! इन दोनों की व्याधि निवारण कर दें तो मुंहमांगा दूंगा।

वैद्य ने कहा : हमें लेने की चाह नहीं है। रोगी सच कहें तो दवा गुण करेगी।

इतना कह कर वैद्य ने पुण्यपाल को अलग ले जा कर कहा : आप इनके कपटाचार की कहानी ध्यान से सुनिएगा। इसके बाद वैद्य औषध लेकर आया। पर्दे के पीछे ले जा कर उसने पूछा : सच बोलना; तुम्हें रोग कैसे हुआ ? दोनों रोगियों ने बतलाया कि उन्होंने पुण्यपाल की पत्नी की ओर कुभाव किया, उसे कलंक लगाया, अतएव कोढ़ का शिकार होना पड़ा। पुण्यपाल यह सुन कर सिर धुनने लगा। मित्र इतना विश्वासघाती ! अन्त में धनवती ने असली रूप प्रगट किया।

पुण्यपाल और धनवती का मिलना हुआ। वे सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

यह उदाहरण सुनाने के पश्चात् प्रवर्त्तिनीजी ने कहा : कर्म की गति बड़ी विचित्र है। जिसने धर्म का अभ्यास नहीं किया, उसकी सुगति कैसे होगी ?

सतीजी की देशना सुनकर महेश्वरदत्त चौंक उठा और चिन्तातुर हो गया। सती के पूछने पर उसने अपनी पत्नी के परित्याग की कथा सुनाई और हार्दिक पश्चात्ताप किया। तब सती ने कहा : मैं ही नर्मदासुन्दरी हूं। तुम्हें बोध देने आई हूँ। संसार के स्वरूप को समझो। महेश्वरदत्त की लज्जा की सीमा न रही। वह क्षमा-याचना करने लगा। उसने आर्य सुहस्ती से और ऋषिदत्ता ने सती नर्मदा से दीक्षा ग्रहण की। संयम पालन कर स्वर्ग के अधिकारी बने। नर्मदासुन्दरी एक मास की संलेखना कर स्वर्ग सिधारी। वह एक भव करके मोक्ष प्राप्त करेंगी।

अपने शील की रक्षा के लिए प्रचंड यातनाएँ सहन करने वाली महासती नर्मदासुन्दरी धन्य है।*

---

* सं० १७५४ पौ० कृ० १३ को तपागच्छीय श्रीमोहनविजयजी द्वारा लिखित रचना के आधार पर।